प्रवचन

परमहंस श्री हंसानंद जी सरस्वती दण्डी स्वामी जी

विषय तालिका

CD # 61 - A * SEP 2013 *

SN	Title	Min	Coding	Contents
1	01 Sep 2013	40	श्रीमद्भागवत् * प्रथम स्कन्ध प्रथम अध्याय प्रथम श्लोक * भाग — १	सभी पुराणों में भागवत् पुराण सर्वश्रेष्ठ है। भागवत् में भगवान का सगुण-निराकार, सगुण-साकार और निगुर्ण-निराकार ३ प्रकार का स्वरूप **प्रथम स्कन्ध/प्रथम अध्याय/प्रथम श्लोक** में बताया है फिर इन्हीं ३ श्लोकों का विस्तार भागवत् में हुआ है। छः लक्षणों से युक्त ब्रह्मसूत्र के प्रथम श्लोक से भागवत् का आरम्भ होता है। **संक्षेप में सूत्र का लक्षण** - थोड़े अक्षर व बहुत अर्थ बोधक हो, **विस्तार में सूत्र का लक्षण** - १.अल्पाक्षर २.संदेह रहित ३.सार रूप ४.चार मुख ५.अनिंद्य ६.व्यर्थ का कोई शब्द न हो । एक श्लोक में ४ चरण होते हैं - पहले में स०नि०, दूसरे में स०सा०, तीसरे में नि०नि० का वर्णन है पहला चरण :- इसमें स०नि० यानि ईश्वर का वर्णन है। निनि० ब्रह्म में रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान एक झूठी माया का प्रादुर्भाव होता है फिर सत्-रज-तम ३ गुण वाली माया ने शुद्ध सत्व गुण से विद्या और मलिन सत्व गुण से अविद्या का रूप धारण किया। विद्या-माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाला ईश्वर हुआ और अविद्या-माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा जो अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान जीव हुआ, इस प्रकार माया से ईश्वर और जीव बन गये। सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण को पुरुष कहते हैं। भगवान का सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण स्वरूप ब्रह्म है। हम पुरुष हैं हमारी छाया झूठी है जो हमसे उत्पन्न होती है व हम में ही लीन हो जाती है। अतः अधिष्ठान ब्रह्म+विद्यामाया+ब्र०का प्रतिबिम्ब = ईश्वर तथा अधिष्ठान ब्रह्म+अविद्यामाया ब्र०का प्रतिबिम्ब = जीव, माया विशिष्ट ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ब्रह्म, ईश्वर और जीव तीन हो गये / शुद्ध ब्रह्म तो निनि० आधार-अधिष्ठान सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण ब्रह्म है / ईश्वर सत्वगुण प्रधान माया के द्वारा जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करता है और जब / जीव ईश्वर की भक्ति करता है तो ईश्वर की कृपा से अपने शुद्ध स्वरूप को जानता है और इस प्रकार से उसकी मुक्ति होती है। स०नि० से ही जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय होती है, ये ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है दूसरा चरण :- इसमें स०सा० ब्रह्म का वर्णन है। सबसे पहले पहले स०नि० ब्रह्म से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई फिर ब्रह्मा को शोक-मोह से युक्त देखकर ईश्वर ने स०सा० चतुर्भुज विष्णु का रूप धर कर ब्रह्मा को वेद (ब्रह्म ज्ञान) का उपदेश दिया और ईश्वर-जीव-जगत को जानकर वे मुक्त हो गये। भगवान ने अपने वास्तविक ब्रह्म स्वरूप का उपदेश दिया व बताया कि माया से मैं ही ईश्वर बनता हूँ और मैंने ही तुम ब्रह्मा-रूपी पुत्र को उत्पन्न किया अब तुम सृष्टि करो - इस प्रकार जगत की उत्पत्ति का काम ब्रह्मा को सौंप दिया तीसरा चरण :- तीसरे चरण में दृष्टान्त है जैसे रज्जु में सर्प मिथ्या ही दिखाई पड़ता है अथवा मरुभूमि में मृगों को जल की झूठी प्रतीति होने लगती है और वे भटक-२ कर प्राण छोड़ देते हैं ऐसे ही जीव-रूपी अल्पज्ञ मृग को आधार-अधिष्ठान ब्रह्म में झूठा जल-रूपी संसार दिखाई पड़ रहा है। ये संसार (स्त्री-पुत्र-धन-राज्य) झूठे मृगतृष्णा के जल के समान है जिसके पीछे ये जीव सुख की प्यास बुझाने के लिये भटकता रहा, प्यास बुझ न पायी और मर गया चौथा चरण :- ४थे चरण में निनि० ब्रह्म का वर्णन किया, व्यासजी कहते हैं कि माया और माया का कार्य जिसमें मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है-रज्जु में सर्प व मरुभूमि में जल के समान, हम उस परम सत्य का ध्यान करते हैं, परम सत्य विद्या-अविद्या से परे सच्चिदानंद ब्रह्म है - भगवान, परम सत्य ब्रह्म का ध्यान करते-करते जीव भी तदाकार हो जाता है यानि ध्यान करते-करते ब्रह्म रूप ही हो जाता है, वही परम सत्य हमारा वास्तविक स्वरूप है अतः **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'**, ईश्वर-जीव सब मिथ्या हैं -
2	02 Sep 2013	40	श्रीमद्भागवत् * प्रथम स्कन्ध प्रथम अध्याय प्रथम श्लोक * भाग — २	**भागवत् १/१/१ ::** इसमें भगवान के ३ रूप बताये हैं, पहले **स०नि०** फिर **स०सा०** फिर **नि०नि०** रूप बताया गया है। सृष्टि के आदि में सच्चिदानंद परम ब्रह्म परमात्मा अकेले थे उनमें पुरुष की छाया के समान ३ गुण वाली माया का प्रादुर्भाव हुआ और उस माया ने स्वयं ही शुद्ध-सत्वगुण की प्रधानता से **'विद्या'** व मलिन-सत्वगुण की प्रधानता से **'अविद्या'** - दो रूप धारण कर लिये ।इन दोनों में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा, विद्या-माया में पड़े प्रतिबिम्ब का नाम **ईश्वर** पड़ा और वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हुआ, अविद्या-माया में पड़े प्रतिबिम्ब का नाम **जीव** पड़ा और वह अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान हुआ। ईश्वर सृष्टि का कर्ता भया तथा जीव अल्पज्ञ होने से ईश्वर की भक्ति करता है और ईश्वर की कृपा से वह भी अपने 'ब्रह्म' स्वरूप को जान जाता है। अतः अधिष्ठान ब्रह्म+विद्यामाया+ब्र० का प्रतिबिम्ब = ईश्वर तथा अधिष्ठान ब्रह्म+अविद्यामाया+ब्र०का प्रतिबिम्ब = जीव, है। ईश्वर स०नि० है, साकार नाम शरीरों का है अभी ईश्वर में कोई आकार नहीं है, ये सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर जगत की उत्पत्ति करता है। ईश्वर ने सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया यही पहला जीव है तथा उन्हें शोक-मोह से युक्त देखकर भगवान ने ससा० चतुर्भज विष्णु का रूप धारण कर उन्हें वेद अर्थात् ज्ञान का उपदेश दिया तो ब्रह्माजी का शोक-मोह-अज्ञानता दूर हो गयी और वे मुक्त हो गये। इसी प्रकार से समय-समय पर भगवान ने ससा० रूप में अवतार लिया जैसे राम कृष्ण शिव शक्ति आदि। भगवान का निनि० स्वरूप शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म है जो सृष्टि के आदि में था, जहाँ माया प्रकट नहीं हुई थी अतः ईश्वर-रूप सनि० है और राम-कृष्ण आदि अवतार ससा० रूप हैं। इन्हीं ससा० रूपों से भगवान साधु ब्राह्मण देवताओं की रक्षा करते हैं संसार को शिक्षा देते हैं और दुष्टों का दलन करते हैं। यही बात भगवान ने गीता में कही है - *'यदा यदा हि धर्मस्य ... सृजाम्यहम्'-भ०गी० ४.७ , 'परित्राणाय साधुनाम् ... सम्भवामि युगे युगे'-भ०गी० ४.८* । इस प्रकार भगवान के ३ रूप हो गये - ससा०, सनि० व निनि०, इन्हीं तीन स्वरूपों का विस्तार सम्पूर्ण भागवत् में है। दुष्टों के नाश के लिये भगवान ने त्रेता में राम तथा द्वापर में कृष्ण का रूप धारण किया। भगवान के गर्भ में आने पर ब्रह्मादि देवता द्वारा भगवान की स्तुति - हे प्रभु! आपकी प्रतिज्ञा, आपका व्रत सत्य है इसमें संदेह नहीं, आप परम-सत्य हो, ब्रह्म रूप भी तुम्हीं हो यानि वह परम-सत्य ब्रह्म ही है, उस ब्रह्म के ज्ञान से जन्म-मरण से मुक्ति होती है। तीनों काल में एक आप ही सत्य हैं - ये निनि० ब्रह्म का निरूपण है। ससा० स्वरूप तो प्रयोजन सिद्ध होने पर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं पर परम-सत्य निनि० ब्रह्म की उत्पत्ति-नाश नहीं होता और जो अल्प-सत्य हैं जीव-ईश्वर क्रमशः अविद्या-विद्यामाया वाले, इनकी आप योनि अर्थात् कारण हो। अज्ञानी लोग संसार को भी सत्य मानते हैं, आप इस संसार की भी योनि हो - ईश्वररूप से जगत की उत्पत्ति करते हो। इस संसार के कण-कण में आप समाये हो, आकाशवत् व्यापक हो एवं झूठ और सत्य के भी द्रष्टा-साक्षी हो। परम-सत्य आप ही हो, सभी सत्यों का अर्थ आप में ही घटता है प्रभु - फिर भगवान का प्राकट्य हुआ। भागवत् में व्यासजी आदि-मध्य और अन्त में इसी 'सत्य-स्वरूप' का वर्णन करते हैं। सम्पूर्ण भागवत् में निनि० ससा० और सनि० का निरूपण है। ईश्वर ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया व उन्हें शोक-मोह से युक्त देखकर उन्हें चतुर्भुज विष्णु के रूप में ज्ञान का उपदेश दिया और उनसे ये ज्ञान नारद जी→व्यास जी→परमयोगी शुकदेव जी→भगवान के परम भक्त राजा परीक्षित को प्राप्त हुआ । उन तीन रूपों में (ससा०, इसके पहले ईश्वर का रूप सनि० और उससे पहले परमसत्य सच्चिदानंद ब्रह्म निनि०) जो परम-सत्य है *(सत्यं-ज्ञानं-अनंतम् ब्रह्म)* उस परम-सत्य का स्वरूप निरूपण (अन्तिम उपदेश) राजा परीक्षित ने सुना और वे उस परम-सत्य सच्चिदानंद ब्रह्म में स्थित हो गये जो जीवात्मा और परमात्मा का एकत्व है - 'अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा' - जीव का भी वास्तविक स्वरूप निनि० ब्रह्म है यानि ब्रह्म और जीव अभेद हैं राजा परीक्षित की स्थिति - परम प्रकाशरूप जो ब्रह्म है 'मैं वही हूँ' तथा जो परमपद है जिसको पाकर जीव जन्म-मरण के भवकूप में नहीं गिरता 'वो मैं हूँ' इस प्रकार से ब्रह्म और आत्मा के एकत्व में वे स्थित हो गये यानि शुद्ध सच्चि० ब्रह्म में तद्रूप हो गये, समाधिस्त हो गये। सर्प और स्थूल देह तो जागृत में ही रहते हैं, स्वप्न में सूक्ष्म देह रहता है व सुषुप्ति में तो सूक्ष्म देह भी नहीं रहता तो परीक्षित तो ४थे तुरीय में स्थित हो गये वहाँ

				सॉप कहाँ पहुँचेगा? वे तो इस देह से उठकर ब्रह्म में स्थित हो गये। व्यास जी कहते हैं कि उस परमसत्य का हम ध्यान करते हैं। ध्यान का फल क्या होता है → ध्याता और ध्यान ध्येयरूप (एकरूप) हो जाते हैं (ध्याता जीव है, मन ध्यान है और ध्येय ब्रह्म है) फिर ध्येय यानि केवल ब्रह्म ही रह जाता है - इसी को **समाधि** कहते हैं।	
3	03 Sep 2013	31	मदालसा का नवजात पुत्र को उपदेश	गुरु का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। माता प्रथम गुरु है, माता का स्थान पिता से १० गुना अधिक है। माता के बताने पर ही पिता का ज्ञान होता है। वेद माता है, वेद भगवान से ही प्रकट हुआ है। भगवान पिता हैं, वेद माता के बताने पर ही पिता का ज्ञान होता है। एक मदालसा नाम की माता सरस्वती का अवतार थी, उसने ये प्रण किया कि जो भी मेरे गर्भ में आयेगा उसे मैं अवश्य ही ज्ञान दूँगी, उसका संसार से उद्धार करूँगी, जन्म-मरण रूपी सागर से मुक्त कराउँगी व दूसरा जन्म उसका नहीं होगा। सरस्वती सबको ही ज्ञान देती हैं, ये वेदमाता शब्द रूप हैं व सरस्वती का ही अवतार हैं। सरस्वती के अनेक नाम हैं जैसे - ब्राह्मी, भारती, भाषा, गीर, वाक्, वाणी, व्याहार, उक्तिः, लभ्तम्, भाषितम्, वचनं, वचः ।। **मदालसा का नवजात शिशु को उपदेश** → हे पुत्र! तू हा-हा करके क्यों रो रहा है, तू तो शुद्ध, बुद्ध (ज्ञान स्वरूप), निरंजन (माया से परे) है। ये जो संसार है इससे तू अलग है। ये जगत सपना है, माया-छाया झूठी चीज़ को ही कहते हैं। हे पुत्र! मोह-निद्रा का त्याग करो व अपने सच्चिदानंद स्वरूप में जागो - अपने सच्चिदानंद स्वरूप को जानना ही जागना है। तुम इस संसार रूपी माया को देखने वाले हो, जैसे स्वप्नावस्था झूठी है वैसे ही जागृत अवस्था भी झूठी है क्योंकि जैसे जागृत में स्वप्न नहीं रहता वैसे ही स्वप्न में जागृत नहीं रहता। जा० के पदार्थ स्वप्न में में नहीं रहते और स्वप्न के पदार्थ जा० में नहीं रहते, दृ० - जागृत का राजा स्वप्न में रंक और जागृत का रंक स्वप्न में राजा हो जाता है पर जागने पर ऐसा कुछ नहीं होता अतः जागृत का जगत भी झूठा हो गया यानि जागृत का जगत भी सपना ही है। माता नवजात शिशु को प्रतिदिन यही ज्ञान देती है, यद्यपि अभी वह समझता नहीं है पर रोज़-रोज़ समझाने पर कुछ दिनों बाद वो समझने लगेगा कि आत्मा सच्चिदानंद ब्रह्म ही है तथा ये संसार माया है, झूठा है // **भगवान शंकर भी माता पार्वती से यही कहते हैं** - *'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना, सत् हरि भजन जगत सब सपना'* - हरि एवं हरि का भजन सत्य है और सेसार तो सपना है // यही ज्ञान **भगवान राम ने भ्राता लक्ष्मण को दिया** - *'गो-गोचर जहँ लग मन जाई, सो सब माया जानेउ भाई'*, हे भाई! जहाँ तक इन्द्रियाँ और मन जायें वह सब तुम माया जानो, देखने वाला हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्य है और जा०-स्व०-सु० - इतनी माया है ये आती-जाती रहती है पर हम-आप बराबर रहते हैं, न आते हैं न जाते हैं ।।	
4	04 Sep 2013	49	भगवान जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं	भगवान श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं भगवान जगतपिता और शासक भी हैं क्योंकि वे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर के अवतार हैं। गीता में भगवान ने कहा है :- *'पितहमस्य जगतो ... ऋक्साम यजुरेव च'* - भ०गी०९.१७ - अर्जुन! इस जगत का पिता मैं हूँ, माता भी मैं हूँ, जगत को अपने में धारण करने वाला धाता भी मैं हूँ और मैं ही पितामह भी हूँ। संसार के व्यवहार में संतानोत्पत्ति के लिये माता और पिता की आवश्यकता होती है किन्तु भगवान जगत के माता-पिता दोनों हैं। संसार में किसी भी कार्य के लिये **निमित्त** और **उपादान** दो कारण होते हैं दृष्टान्त - घट के निर्माण में माटी और कुम्भकार की आवश्यकता होती है। उपादान-कारण का अपने कार्य के कण-कण में प्रवेश होता है जैसे माटी घट के कण-कण में व्यापक है तथा निमित्त-कारण कार्य करने के बाद अलग हो जाता है जैसे कुम्भकार घड़ा बनाकर अलग हो जाता है उसका कार्य में प्रवेश नहीं होता। निमित्त-कारण में ज्ञान-इच्छा-प्रयत्न ३ चीज़ों की आवश्यकता होती है यानि बुद्धि में ज्ञान, मन में इच्छा और इन्द्रियों में क्रिया होना चाहिये, तीनों के सहयोग से ही काम बनेगा यानि घड़ा बनेगा किन्तु भगवान कृष्ण कहते हैं कि मैं निमित्त कारण भी हूँ और उपादान कारण भी हूँ, मैं ही संसार को बनाता हूँ और मैं ही बनता भी हूँ दूसरे की ज़रूरत मुझको नहीं पड़ती। मैं ही माटी हूँ व मैं ही कुम्हार हूँ, जड़-चेतन सब मैं ही हूँ। जिसमें न कोई वर्णाश्रम है, न इ०म०वु० आदि ये कुछ भी नहीं है - वह परमब्रह्म परमात्मा है और वही कृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। वे आप ही बनता है और आप ही बनाता है यानि उपदान-कारण भी वही है और निमित्त-कारण भी वही है - ये प्रमाण है वेद का, उदा० - मकड़ी, रोम, अन्न ।। मुझसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है, मुझमें ही रहती है और मुझमें ही भी लय हो जाता है फिर मैं अकेला रह जाता हूँ। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार मैं ही करता हूँ इसलिये भगवान कहते हैं कि मैं पूर्ण पुरुष हूँ - **मैं निमित्त-कारण भी हूँ और उपादान-कारण भी हूँ, इसी में वेद मंत्र है :-** *'यतो वा ईमानि भूतानि ... अभिशंविशन्ति तद्ब्रह्म'* - जिसमें ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है, - *'तत्त्वमसि'* - हे जीव! वही तू भी है, फिर एक अकेला ब्रह्म ही रह गया । **वेद मंत्र कहता है :-** *'नमोस्तुनंताय सहस्त्र मूर्तये... पुरु धारणे नमः'* - सब वासुदेव का ही स्वरूप है मुझसे भिन्न कुछ है ही नहीं। स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि अनेक रूप भी मैं हूँ। कारण-रूप से एक हूँ और कार्य-रूप से मैं अनेक हूँ। अनंत रूपों में भगवान ही हैं दूसरा कोई नहीं है। 'पृथ्वी' माटी-रूप से एक है और घट-मठ रूप से अनेक है, एक रूप से जल है और लहर-फेन-बुलबुले अनेक रूप में भी जल ही है।	
5	05 Sep 2013	27	भक्त और भगवान	महाभारत पुराण गीता रामायण आदि में वेदों का ही विस्तार है। जो ज्ञान वेदों से होता है, इन ग्रन्थों से भी वही ज्ञान होता है। भगवान कहते हैं कि चराचर जगत का मैं पिता हूँ, मुझसे ही जगत उत्पन्न होता है मुझमें ही रहता है पुनः मुझमें ही लीन हो जाता है। ये जगत सत्वगुण-रजोगुण-तमोगुण ३ गुणों से बनता है, तीन गुण वाली मेरी माया है। संसार में कोई सत्वगुणी (दैवीय स्वभाव), रजोगुणी (मनुष्य), और कोइ तमोगुणी (असुर स्वभाव) के हैं। **रामायण में तुलसीदासजी कह रहे हैं कि :-** *'एक पिता के विपुल कुमारा, होहिं पृथक गुण शील अचारा'* - एक पिता के अनेक पुत्र हैं पर उन सबके गुण-स्वभाव अलग-अलग हैं, कोई तपस्वी है कोई ज्ञानी है कोई धनवान या दानी है कोई सर्वज्ञ व धर्माचरण वाला है, सभी पुत्रों पिता की प्रीति बराबर होती है क्योंकि पिता को सभी पुत्र प्यारे हैं। माता-पिता से एवं भाई-बहनों से शरीर की आकृति तो आपस में मिलती हैं पर स्वभाव नहीं मिलते क्योंकि जीव के स्वभाव पूर्व जन्म से आते हैं। शरीर का ही जन्म हुआ है, स्वभाव तो जीव में होते हैं। जीव तो पिता ने उत्पन नहीं किया। स्वभाव जीव के पूर्व जन्म के संस्कारों से आते हैं। सत्व-रजो-तमोगुणी स्वभाव मरते समय सूक्ष्म-रूप से जीव के मन में रह जाते हैं क्योंकि सूक्ष्म शरीर का नाश नहीं होता केवल स्थूल शरीर ही बदलता रहता है इसलिये मन के स्वभाव संस्कारों के अनुसार बने रहते हैं। कोई ऐसा पुत्र है जो तपस्वी ज्ञानी दानी आदि कुछ नहीं है पर मन-वचन-कर्म से केवल माता-पिता की सेवा करना ही अपना धर्म समझता है अतः ये सेवक पुत्र माता-पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है। यद्यपि वह सब प्रकार से अज्ञानी है परन्तु वो माता-पिता की देवता के समान सेवा करता है। इसी प्रकार से संसार में जितने भी चर-अचर जीव हैं एवं त्रिजग, देव, मनुष्य, असुर समेत ये अखिल संसार मेरे द्वारा ही उत्पन्न किया हुआ है, मैं ही पिता हूँ और मेरी महामाया शक्ति माता है अतः ये सब प्राणी मेरी संतान भये। सबके उरूपर मेरी बराबर दया है किन्तु इन सभी पुत्रों में से जो अपने अहंकार एवं माया-मोह को छोड़कर मन-वचन-कर्म से मुझे ही भजते हैं वे मुझको परम प्रिय हैं। स्त्री-पुरुष-नपुंसक, चर-अचर कोई भी जीव जो छल-कपट को छोड़कर पूरी भावना से, मन से मेरा ध्यान-चिन्तन करते हैं, वाणी से मेरा नाम जपते हैं और कर्म से मेरी ही पूजा करते हैं - उनको दूसरा कोई काम नहीं है। जो सेवा में रात-दिन रहता है वही अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है ऐसे ही जो भक्त स्त्री-पुत्र-धन-राज्य किसी में नहीं रमता वही मेरे धाम का अधिकारी होगा अतः हमको-आपको भगवान की भक्ति करनी चाहिये इसलिये मन से ध्यान, वाणी से भगवान का नाम व शरीर से भगवान की पूजा-आराधना करनी चाहिये।	
6	06 Sep 2013	41	चतुर्वर्णीय सृष्टि	*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः, तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम* ।।भ०गी०४.१३।। अर्जुन! **'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र'** ४ वर्ण की सृष्टि मैंने की है, ये सब मैंने माया से किया है। माया सत्-रज-तम् ३ गुण वाली है - सत्वगुण की प्रधानता से ब्राह्मण, रजोगुण की प्रधानता से क्षत्रिय, रज-तम की प्रधानता से वैश्य एवं तमोगुण की प्रधानता से शूद्र सृष्टि किया। ये वर्ण व्यवस्था पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि सबमें विद्यमान है दृष्टान्त - **पशु** गऊ सत्व प्रधान है, गऊ के शरीर में ३३ कोटि देवताओं का वास है अतः गऊ के पूजन से उन सबका पूजन हो जाता है, हाथी-घोड़ा रजोगुण तथा सिंह-व्याघ्र तमोगुण प्रधान हैं। इसी प्रकार से ३ गुणों की सृष्टि पक्षियों, वृक्षों और भूमि में भी है **पक्षी** - सत्वगुणी = तोता मैना कबूतर, रजोगुणी = कौवा, तमोगुणी = गिद्ध आदि **वृक्ष** - सत्वगुणी = पीपल वटवृक्ष आँवला केला तुलसी आदि, इनके पूजन से इनका सत्व गुण अपने में आता है **पृथ्वी** - सत्वगुणी = तीर्थ स्थान, रजोगुणी = मदिरालय वैश्यालय, तमोगुणी = शमशान भूमि **सुर-नर-असुर** सत्वगुणी = देवता, रजोगुणी = मनुष्य, तमोगुणी = असुर । अर्जुन! ४ वर्ण की सृष्टि मैंने की है अतः चारों वर्णों का पिता मैं हूँ इस प्रकार चारों वर्ण भाई-भाई भये। चारों वर्णों पर मेरी बराबर दया है। सबके धर्म अथवा कर्तव्य कर्म भगवान ने अलग-अलग बताये हैं ब्राह्मण के धर्म :- १. शम (मन निग्रह) २. दम (इन्द्रिय निग्रह) ३. तप ४. शौचं (स्नान से शरीर की, सत्य एवं साधन-चतुष्ट्य व षट्क-सम्पदा से मन की, विद्या और तप से आत्मा की तथा आत्मा के ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि हो जाती है क्योंकि अपने स्वरूप	

			एवं उनके धर्म	की अज्ञानता बुद्धि की अशुद्धि है) ५. संतोषं ६. क्षमाभाव ७. आर्जवम् (सरल स्वभाव) ८. ज्ञानं - गीता भागवत् आदि का पढ़ना-पढ़ाना व सम्यक ज्ञान तथा छोटे भाईयों को भी माया-ब्रह्म ईश्वर-जीव-जगत का सम्यक ज्ञान कराना मुख्य धर्म है ९. विज्ञानं - अपनी आत्मा को ब्रह्म रूप जानकर ब्रह्म में निष्ठा हो और ब्रह्म स्वरूप में स्थित होवे। वेद कहता है - *'अयं आत्मा ब्रह्म - सो अयं आत्मा'* = आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म आत्मा है माने आत्मा और ब्रह्म एक ही है। तुलसीदास जी भी यही कहते हैं - *'सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा, बारि बीचि इव गावहिं वेदा'*, जो ब्रह्म है वही तू है तुझमें और ब्रह्म में भेद नहीं है जैसे जल और तरंग में भेद नहीं है। वेद ने ब्रह्म का स्वरूप बताया है - *'सत्यं ज्ञानं अनंतम् ब्रह्म'* और महावाक्य कहता है - *'तत्वमसि'* - वह जो ब्रह्म है हे जीव! वही तेरा स्वरूप है। वेद ये ज्ञान देता है, शरीर तो भगवान ने माया से बना दिया व हर शरीर में बैठकर जो सबकी आँखों से देख रहा है वह जीव है, इसी जीव को ये उपदेश दिया जा रहा है कि देखने वाले तुम जीव हो, तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म है इसलिये अपने आप को तुम ब्रह्म जानो। इसी प्रकार दूसरा वेद मंत्र है *'अहं ब्रह्मास्मि'* जो जन्म-मरण के दुःखों का नाश कर देता है अतः अपने को ब्रह्म रूप जानो। इस प्रकार अपने छोटे भाइयों को कर्म-भक्ति-ज्ञान का उपदेश करना चाहिये **क्षत्रिय के धर्म** :- शौर्य (शूरता-वीरता), तेज, धृति (धैर्य), दाक्ष्यं (निपुणता), युद्ध से अपलायन, दानं, ईश्वर भाव यानि ईश्वर की भाँति प्रजा का पुत्रवत् पालन और रक्षा, क्योंकि क्षत्रिय ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है **वैश्य के धर्म** :- कृषि, वाणिज्य व गौरक्षा। अन्न सबसे बड़ा धन है अतः अन्न अधिक से अधिक उपजाना चाहिये। व्यवहार में जीवन निर्वाह के लियें रोटी-कपड़ा-मकान की आवश्यकता होती है पर उनमें भी अन्न प्रधान है **शूद्र के धर्म** :- तीनों भाइयों की सहायता करना एवं भ्रातृवत् प्रेम भाव से रहना ।।
7	07 Sep 2013	34	ब्रह्म और माया	सृष्टि के आदि में एक मात्र सच्चिदानंद परमब्रह्म परमात्मा ही था उस सच्चि०ब्रह्म से पुरुष की छाया के समान एक महामाया का प्रादुर्भाव हुआ। पुरुष से छाया प्रकट होती है, पुरुष के आश्रित रहती है और पुरुष में ही लीन हो जाती है फिर एक अकेला पुरुष ही रह जाता है, ऐसे ही सच्चिदानंदघन ब्रह्म पुरुष है। पुरुष का अर्थ होता है **'पूर्णत्वात् पुरुषः'** अर्थात् जो सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हो उसे पुरुष कहते हैं - **सत्** = जो सत्य से पूर्ण हो यानि जिसका न जन्म हो न मरण हो, **चित्** = जो ज्ञान से पूर्ण हो यानि जिसका उदय-अस्त रहित अखंड ज्ञान हो, **आनंद** = जो आदि-अन्त रहित आनंद का सिन्धु हो। उस पुरुष से छाया की भाँति एक अव्यक्त का प्रादुर्भाव हुआ। अव्यक्त नाम माया का है, माया के अनेक नाम हैं, अव्यक्त नाम की परमात्मा की शक्ति अनादि काल से है। अविद्या व तीन गुण वाली त्रिगुणात्मिका भी उसका नाम है, परमात्मा की शक्ति है इसलिये उसे परा भी कहते हैं, वह अद्भुत् कार्य करती है, असम्भव को सम्भव कर देती है इसलिये उसका नाम माया है जो क्षण मात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है। भगवान ने ये संसार माया ने बिना सामगी के बनाया है दृष्टान्त :- बाल लीला करते हुए भगवान कृष्ण द्वारा माता यशोदा को अपने मुख में अपना विराट रूप दर्शन ।। ये भगवान की माया है, माया से वे अनंत कोटि ब्रह्माण्ड थोड़ी सी जगह में दिखा देते हैं। ये शरीर भगवान की माया से बने हैं व सब शरीरों में **मैं** नामक तत्त्व के रूप में सबके भीतर बैठकर सबकी आँखों से भगवान ही देख रहे हैं। ये 'दृश्य' संसार भगवान की माया है और भगवान ही देखने वाले 'द्रष्टा' हैं। ये शरीर देवालय हैं जो भगवान ने माया से बना दिये हैं और अकेले भगवान ही सबके भीतर बैठकर देख रहे हैं। द्रष्टा ब्रह्म एक है और देवालय अनेक हैं, अनेक मन्दिरों में एक ही देव देख रहा है ।।
8	08 Sep 2013	37	दृग् दृश्य विवेक	भगवान के ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है तो जीव अपने आत्मा और ब्रह्म को एक रूप से समझ लेता है और मुक्त हो जाता है माने जन्म-मरण आत्मा का होता ही नहीं है, नित्य-मुक्त वो पहले से ही है किन्तु वह अपने नित्य-मुक्त स्वरूप को जानता नहीं है अतः वेद जीव को अपना स्वरूप बता देता है **वेद कहता है** - *'दृग्दृश्य द्वौरूपेस्तः परस्पर विलक्षणौ, दृग्ब्रह्म दृश्य मायेति सर्व वेदान्त निर्णयः'* - **द्रष्टा** (देखने वाला) और **दृश्य** (दिखाई पड़ने वाला), **संसार में ये दो ही चीज़ हैं** तीसरा कुछ नहीं है। दोनों परस्पर विलक्षण हैं, दोनों का विरुद्ध स्वरूप है। जो द्रष्टा है वह ब्रह्म है, ब्रह्म का स्वरूप वेदों में **'सत्-चित्-आनंद'** बताया है और वही हमारा-तुम्हारा स्वरूप व आत्मा का स्वरूप बताया गया है - *'तत्वमसि'* - हे जीव जो ब्रह्म है वही तू भी है यानि हम-आप जीव हैं तो द्रष्टा हैं और ये देह हमारा दृश्य है। ये देह न अपने को जानता है न दूसरे को, और हम इस देह में रहते हैं व इस देह को देखते और जानते हैं इसीलिये हम द्रष्टा हैं और ये शरीर दृश्य है अतः द्रष्टा को ब्रह्म व दृश्य को माया कहते हैं। ये शरीर सदा नहीं रहते ये आते-जाते रहते हैं जा०-स्व०-सु० के रूप में। जा०-स्व०-सु० तीनों माया मात्र हैं ये प्रतिदिन आते-जाते रहते हैं, आने-जाने वाले को **'माया'** कहते हैं। २४ घंटे की उम्र इस माया की नहीं रहती, २४ घंटे में ये तीनों बदल जाती हैं पर हम-आप देखने वाले २४ घंटों में रहते हैं। हम जा० में हैं इसलिये **'सत्'** हैं, जा० को देखते हैं इसलिये **'चिद्रूप'** हैं। जागृत स्व० में नहीं रहता, स्व० में सूक्ष्म शरीर रहते हैं। हम स्वप्न में हैं इसलिये **'सत्'** हैं, स्वप्न को देखते हैं इसलिये चेतन यानि **'ज्ञानरूप'** हैं। सुषुप्ति में स्वप्नावस्था लय हो जाती है पर हम बराबर रहते हैं। सुषुप्ति में हम जा० और स्व० के अभाव को देखते हैं और सु० के भाव को देखते हैं यानि इस समय गाढ़ निद्रा है अतः सु० में हम हैं इसलिये **'सत्'** हैं और सु० को देखते हैं इसलिये **चेतन** हैं और **'आनंद स्वरूप'** हैं क्योंकि सु० में इन्द्रियाँ और विषय तो रहते नहीं पर सु० में कितना आनंद होता है? वह आनंद सु० का नहीं है क्योंकि निद्रा तो अज्ञान अंधकार रूप है, वह आनंद अपना ही आनंद है, हम अपने ही आनंद का अनुभव करते हैं। हम ज्ञान स्वरूप से अपने आनंद का अनुभव करते हैं क्योंकि आनंद आँखों का विषय नही है। जा०-स्व० में भी जो आनंद मिलता है वह आनंद विषयों का नहीं अपितु अपनी आत्मा का आनंद है। आनंद अपने अनुभव का ही विषय है, हम ज्ञान स्वरूप हैं इसलिये अपने आनंद को हम ही जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता। इसी प्रकार से दुःख का भी कोई आकार नहीं है उसे भी हम ज्ञान स्वरूप ही जानते हैं // सब शरीरों में **'मैं'** देखने वाला एक ही हूँ, एक ही देव है, देखने वाले को देव कहते हैं तो देखने वाले तो हम ही हैं। ऐसे ही देखने वाने को ब्रह्म कहते हैं तो आत्मा माने 'मैं' अतः आत्मा और ब्रह्म एक है - *'अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा'* - **अर्थात् आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं।** सब शरीरों में रहने से **'आत्मा'** और शरीर के बाहर रहने से **परमात्मा** कहते हैं जैसे घटाकाश, मठाकाश और महाकाश में एक ही आकाश है, वह अखण्ड है। घट-मठ बनते-बिगड़ते रहते हैं, नष्ट होने पर एक आकाश ही रह जाता है इसी प्रकार शरीर के भीतर रहने से आकाश के समान व्यापक परमात्मा को जीवात्मा कहा जाता है और बाहर रहने से परमात्मा कहा जाता है पर आकाश के समान ब्रह्म भी अखण्ड है, शरीर के भीतर-बाहर भेद से दो नाम पड़ गये। अब जब शरीर नहीं रहते हैं तो आत्मा-परमात्मा का भेद भी नहीं रहता, जब एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही रह जाता है इस प्रकार एक ही देव है, द्रष्टा को ब्रह्म और दृश्य को माया बताया है। माया से ये सब शरीर बने हैं। हम तुम शरीर नहीं हैं। नाम-रूप शरीरों के हैं हम निराकार हैं, शरीर दिखाई पड़ते हैं हम दिखाई नहीं पड़ते। 'स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत' शरीरों के नाम हैं जीवात्मा के नहीं और हम-आप जीवात्मा हैं हम शरीर नहीं हैं। हम इन शरीरों में रहते हैं तथा शरीरों से अलग हैं क्योंकि हम आकाश की तरह व्यापक और सूक्ष्म हैं इसलिये शरीर में रहते हुए भी शरीर से अलग हैं व शरीर को देखने वाले हैं। शरीर जन्मता-मरता रहता है पर ये जीवात्मा (यानि हम) न जन्मता है और न मरता है, मृत्यु का कारण जन्म होता है। हम-आप जीवात्मा हैं तो मारेगा कौन? **भगवान कहते हैं कि जीवात्मा 'मैं' परमात्मा ही हूँ।** मैं एक हूँ, बाहर-भीतर होने से मेरे नाम दो हो गये। जितने भी शरीर हैं ये सब मकान या देवालय हैं जो मेरी माया से बन गये हैं और जो देखने वाला देव है वह शिवस्वरूप है, कल्याण व आनंद स्वरूप है। **मैं एक हूँ मन्दिर अनेक हैं।** सब शरीरों में देखने वाला मैं एक ही हूँ। भगवान की इच्छा शक्ति ही माया है, वो अच्छा करने मात्र से एक से अनेकरूप संसार हो जाते हैं, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड वो अपनी इच्छा/माया से क्षण मात्र में बना देते हैं // जो जा०-स्व०-सु० तीनों को प्रकाशता है वह ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ क्योंकि जा०-स्व०-सु० को मैं ही देखता हूँ। ये तीनों २४ घंटे में बदल जाते हैं इसलिये हमारा-तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म है क्योंकि हम देखने वाले हैं, देखने वाले द्रष्टा को ब्रह्म कहते हैं और जा०-स्व०-सु० इतनी माया है। **माया और ब्रह्म दो ही चीज़ हैं - दृग् ब्रह्म है व दृश्य माया है** अतः हम द्रष्टा होने से हम ब्रह्म हैं और जा०-स्व०-सु० दृश्य हैं, बस इतनी ही माया है तीसरी वस्तु कुछ है नहीं। द्रष्टा एक है और दृश्य अनेक हैं। अर्जुन! देखने वाला जो देव (ईश्वर) है वह सब भूत-प्राणियों के शरीर-रूपी मन्दिर के अन्दर हृदय-रूपी सिंहासन पर बैठकर देख रहा है और वह एक ही है अतः हमारा स्वरूप देखने वाला 'द्रष्टा' ब्रह्म है ।।
9	09 Sep 2013	29		**वेद कहता है** :- ये सारा संसार माया से उत्पन्न हुआ है और जो भगवान के अवतार होते हैं वे भी माया से ही उत्पन्न होते हैं। अर्जुन! मैं अजन्मा हूँ मेरा जन्म नहीं होता इसलिये मरण भी नहीं होता इसीलिये मैं अविनाशी हूँ। अर्जुन! तेरे सामने जो मेरा ये प्रत्यक्ष रूप खड़ा हुआ है वह मेरी माया से प्रकट होता है पर वास्तव में मैं अजन्मा हूँ, भगवान भी यदि जन्मने-मरने वाला होगा	

			माया और ब्रह्म			तो वेद वाणी का विरोध होगा, वेद वाणी ईश्वर वाणी है जो परम सत्य है। भगवान न जन्मता है न मरता है और भगवान का अंश ही जीव है इसी प्रकार जीवात्मा का भी जन्म-मरण नहीं होता क्योंकि जीव मेरा अंश होने से चेतन यानि ज्ञान-स्वरूप है, अविनाशी, अमल और स्वभाव से ही सुखराशि है इस प्रकार से जीवात्मा और परमात्मा एक ही है और अर्जुन! ये जो सारा संसार तुम्हें दिखाई पड़ रहा है व मेरा शरीर भी दिखाई पड़ रहा है - ये मैं अपनी इच्छा शक्ति से/माया से प्रकट कर लेता हूँ, जो इच्छा करता हूँ वही बन जाता हूँ व अपनी इच्छा मात्र से एक से अनेक तुरन्त ही बन जाता हूँ। मेरी इच्छा शक्ति मेरी माया है। मैं जैसे प्रकट होता हूँ इच्छा करने से वैसे ही अन्तर्ध्यान भी हो जाता हूँ। सचमुच में यदि मेरा जन्म होगा तो फिर मैं मरूँगा भी, तो वेद कहता है कि ब्रह्म का जन्म-मरण नहीं होता वह अनादि-अनंत है, तो सचमुच में मेरा जन्म नहीं होता है व मेरी ही तरह जीवात्मा का भी न जन्म होता है न मरण क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म होता है। जिस प्रकार रज्जु के अज्ञान से उसमें भ्रान्ति से सर्प दिखाई पड़ता है उसी प्रकार मुझ परमात्मा को न जानने से ये संसार दिखाई पड़ता है अतः ये संसार झूठा है क्योंकि जो चीज़ माया से बनती है वह झूठी हुआ करती है जैसे इन्द्रजाल की माया जिससे बाजीगर बिना सामग्री के झूठे ही आम अमरूद मिठाई बना देता है। इस प्रकार ये संसार इन्द्रजाल की तरह झूठा है, सत्य के जाने बिना झूठा भी सत्य मालूम पड़ता है। हमारी तुम्हारी आत्मा ही सत्य है, ये जगत झूठा है। जैसे मन्द अन्धकार में रज्जु में सर्प का भ्रम होता है वैसे ही भगवान रज्जु के समान परम सत्य हैं और ये संसार सर्प के समान भ्रमरूप है। जब तक कि सम्यक ज्ञान नहीं होता, ज्ञानरूपी प्रकाश नहीं होता (अज्ञान अंधकार कहलाता है और ज्ञान प्रकाश है सूर्य है) यानि जब तक पूरा-२ ज्ञान-प्रकाश नहीं होता है तब तक ये संसार सर्प के समान दिखाई पड़ता है। झूठा संसार सत्य मालूम पड़ता है। ज्ञान का साधन वेद है व वेद मंत्रों का अर्थ बताने वाले गुरु हैं अतः गुरु के बताने पर जब ब्रह्म-ज्ञान हाता है तो झूठ 'झूठ' और सत्य 'सत्य' मालूम पड़ता है, तो **वेद कहता है** - *'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परा'* - **ब्रह्म सत्य है और सत्-चित्-आनंद रूप है व जगत मिथ्या है।** जगत का अर्थ ये शरीर होते हैं, सब शरीरों के भीतर बैठकर जो देख रहा है वह एक अद्वितीय ब्रह्म है और ये शरीर सर्प के समान झूठे हैं, ये सदा नहीं रहते। जा० के देह स्व० में और स्व० के देह सु० में नहीं रहते। सुषुप्ति में न कोई शरीर रहते हैं और न मन-बुद्धि ही रहते हैं, सुषुप्ति/गाढ़ निद्रा में घोर अन्धकार है वही है माया, उसी से जा०-स्व० का संसार निकलता है और उसके आगे समाधि है, समाधि में केवल हम ही रहते हैं। तो आदि में हम हैं मध्य में हम हैं और अन्त में हम हैं क्योंकि हम द्रष्टा-साक्षी ब्रह्म हैं। जीवात्मा परमात्मा का स्वरूप है, परमात्मा द्रष्टा-साक्षी है इसलिये हम देखने वाले हैं हमारा नाश नहीं होता। हम दिन-रात व जा०-स्व०-सु० सबमें रहते हैं और सबको देखते हैं इसीलिये सत्य हैं और द्रष्टा हैं पर ये दिन-रात और इनके बीच में इनों अवस्थायें रोज़ आती-जाती रहती हैं ये हमें नहीं देखते - ये माया है पर हम तो वही के वही रहते हैं इसलिये *'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परा'* - **ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है और जीवात्मा तो ब्रह्म ही है।** देह उपाधि भेद से भगवान के जीवात्मा और परमात्मा दो नाम हैं वस्तुतः भगवान आकाश की भाँति अखंड हैं और जीवात्मा-परमात्मा अभेद हैं। ये देह ही माया से बनते-बिगड़ते रहते हैं भगवान तो सदा इनके भीतर-बाहर ज्यों के त्यों ही रहते हैं, उनकी ज्ञान-दृष्टि का कभी नाश नहीं होता ।।
10	10 Sep 2013	47	⊕			**हमें ज्ञान गुरुओं से ही मिलता है अतः गुरुओं का स्थान सर्वश्रेष्ठ है।** भगवान कृष्ण तो गुरुओं के भी गुरु हैं और उनसे ही सृष्टि होती है इसलिये वे हमारे पिता भी हैं और वेद उन्हीं से प्रकट हुआ है इसलिये वे परम गुरु भी हैं। सारे संसार पर उन्हीं का शासन है इसलिये वे राजा भी हैं अतः हर दृष्टि से हमें भगवान कृष्ण की आज्ञा माननी चाहिये। भगवान जगत के गुरु हैं तथा सारे संसार को वो ही उत्पन्न करते हैं। भगवान ने स्वयं कहा है *'पिता हमस्य जगतो ... ऋक्साम यजुरेव च'* - भ०गी०९.१७, अर्जुन! जगत का माता-पिता-धाता मैं ही हूँ और जगद्गुरु भी हूँ, वेद मुझसे प्रकट भये हैं व वेद में सब ज्ञान है। पवित्र ओंकार भी मैं हूँ, ओंकार का विस्तार वेद हैं वह भी मैं ही हूँ अतः भगवान गुरुओं के भी गुरु, सबके माता-पिता और सबके शासक भी हैं। भगवान का शासन सबके ऊपर है। भगवान की आज्ञा व भय से अग्नि तपता है व व सूर्य समय पर उदय-अस्त होता है, इन्द्र वर्षा करता है, वायु चलता है और मृत्यु भी दौड़ा-दौड़ा फिरता है। भगवान की आज्ञा सभी देवी-देवताओं पर भी है // हे अर्जुन! **कर्म** को जानना चाहिये तथा **विकर्म** और **अकर्म** को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति बहुत कठिन और गूढ़ है अतः तुम सावधान मन से सुनो :- जिसके ऊपर यानि अधिष्ठानपने में कर्म और विकर्म होता है उसे **अकर्म** कहते हैं। आत्मा अकर्म है, भगवान कहते हैं कि मैं अकर्म हूँ। ये सारी सृष्टि और इसमें जो कर्म हैं वे सब इ०म०बु०प्रा० में होते हैं व ये सब मेरी माया/प्रकृति से बने हैं इसलिये सारे कर्म प्रकृति में हैं। अर्जुन! जो कर्म में अकर्म को और अकर्म में कर्म को देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान है, वही योगी है अर्थात् उसने सभी करने योग्य कर्मों को कर लिया है उसे अब कुछ भी करना-पाना या जानना शेष नहीं। अर्जुन! मेरी वाणी वेद है उसमें मैंने २ प्रकार के कर्म कहे हैं, सभी जीवों के लिये जिनका मैंने विधान किया है उन्हें विहित-कर्म/कर्म/धर्म/शुभ-कर्म अथवा पुण्य-कर्म कहते हैं और जिन कर्मों का निषेध किया है उन्हें विकर्म/अधर्म/अशुभ-कर्म अथवा पाप-कर्म कहते हैं। विहित-कर्मों में अहिंसा प्रथम और परम धर्म है व हिंसा अधर्म है // भगवान ही अमृत हैं क्योंकि भगवान का न जन्म होता है न मरण होता है। भगवान का अंश हम-आप सब जीव हैं तो जीव का भी जन्त-मरण नहीं होता, वह भी अचल और सनातन है - *'न जायते म्रियते ... न हन्यते हन्यमाने शरीरे'* - भ०गी०२.२०, क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म होता है तो जिसका जन्म ही नहीं हुआ उसे मृत्यु मारेगी कैसे? अर्जुन ! इन शरीरों का जन्म होता है तथा इन शरीरों की मृत्यु होती है और जीवात्मा मेरा अंश है जो सब शरीरों के भीतर बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है। जीव तो शरीर नहीं है उसका जन्म नहीं हुआ है तो उसे मारेगा कौन? इसलिये जीवात्मा अमृत है। भगवान के भक्त संत-महात्मा **'भगवान का ज्ञान' - 'गीता ज्ञान'** रूपी अमृत ही पिलाते हैं अतः सच्चा अमृत भगवान का ज्ञान है जिससे जीव भगवत् रूप हो जाता है - *'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति'* । जितने भी शरीर हैं वे मेरी माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं, मेरी माया से सारा संसार बन जाता है। इन सबके भीतर मैं ही बैठा हूँ, मैं तो अजर-अमर-अविनाशी हूँ। सबके भीतर बैठकर मैं ही देख रहा हूँ, ये जीवात्मा तो मेरा ही स्वरूप है। ये देह देवालय हैं और इनमें बैठकर देखने वाला देव स्वयं मैं ही हूँ। देव एक है और स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि देहरूपी देवालय अनेक हैं ।।
11	11 Sep 2013	30	⊕	⊕		**वेद मंत्र कहता है कि :-** सृष्टि के आदि में एक मात्र सच्चिदानंद ब्रह्म ही था इस ब्रह्म में नानात्व कुछ भी न था वह एक ही था फिर उस परम ब्रह्म परमात्मा से रज्जु में सर्प के समान अथवा पुरुष में छाया के समान अव्यक्त का प्रादुर्भाव हुआ। रज्जु के अज्ञान से उसमें सर्प भासता है। अव्यक्त नाम माया का है, माया के अनेक नाम हैं। अव्यक्त नाम की परमात्मा की शक्ति है, ये अनादि है। जबसे भगवान हैं तब से माया है - ये अज्ञान रूप है और भगवान को ढके रहती है, ये सत्-रज-तम् तीन गुण वाली है, परमात्मा की शक्ति है इसलिये इसे परा भी कहते हैं। क्षण मात्र में ये चराचर जगत उत्पन्न कर देती है इसलिये इसे विद्वान लोग माया कहते हैं जो बिना सामग्री के ही अनंत कोटि ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है व न घटने वाली घटना को घटा कर दिखा देती है। ये माया बिल्कुल झूठी है जैसे पुरुष में छाया // सृष्टि क्रम :: ब्रह्म→अव्यक्त→महत् तत्त्व (समष्टि बुद्धि)→अहं तत्त्व (समष्टि मन)→पंचतन्मात्रायें (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध)→पंचमहाभूत (आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी)→पंचमहाभूतों के पंचीकरण से (२५ तत्त्वों के) सब स्थूल शरीर बन गये पंचीकरण का विवरण पृथ्वी = अस्थि, चर्म, नाड़ी, रोम, मॉस, जल = मूत्र, श्लेष्म, रक्त, स्वेद, शुक्र, अग्नि = भूख, प्यास, आलस्य, मोह, मैथुन, वायु = हाथ-पैरों का फैलाना-सिकोड़ना, स्वॉस लेना-छोड़ना, मुँह खोलना-बन्द करना, ऑखें खोलना-अन्द करना, आकाश = काम, क्रोध लोभ मोह भय । इस प्रकार इन २५ तत्त्वों से सारे संसार के स्थूल शरीर बन गये // हमारे शरीर में बैठकर जो देख रहा है वह मेरा ही अंश है यानि वह मैं ही हूँ, स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी देव-दानव आदि सबके शरीर तो मेरी माया से बन गये हैं। सब शरीरों के भीतर मुझे जीवात्मा कहते हैं और मैं ही बाहर परिपूर्ण हूँ तो मुझे ही परमात्मा कहते हैं। मेरा जन्म नहीं होता। सभी देहरूपी देवालयों में एक ही देव है, वह मैं ही हूँ। देखने वाले को देव कहते हैं। जिनकी उत्पत्ति होती है उन्हें भूत कहते हैं। सब शरीर भूत हैं और ये अनंत हैं और सबमें बैठकर देखने वाला मैं ही हूँ। देह देवालय है व देवालय छोटे-बड़े अनेक हैं जो भगवान ने अपनी माया से बिना सामग्री के बना दिये हैं और उनमें बैठकर वे स्वयं ही देख रहे हैं इसलिये हमारा आपका स्वरूप देव है क्योंकि हम देखते हैं। हमारा शरीर देवालय है स्वयं भगवान ने देवालय भी बना दिया है और स्वयं ही उसमें बैठकर देख रहे हैं तो भगवान से अतिरिक्त कोई कहाँ है फिर?
12	12 Sep 2013	43				**अर्जुन! कर्म को जानना चाहिये, विकर्म को जानना चाहिये और अकर्म को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति अत्यन्त गूढ़ है।** मैं तुम्हें बताता हूँ तुम सावधान मन से श्रवण करो। वेद वाणी मेरी आज्ञा है। वेद-विहित कर्मों को **'कर्म'** तथा वेद-विरुद्ध कर्मों को **'विकर्म'** कहते हैं। मैंने मनुष्य मात्र को ये उपदेश किया है। अर्जुन! श्रुति-स्मृति (वेद-पुराण) मेरी आज्ञा है, जो मेरी आज्ञा का

			कर्म विकर्म और अकर्म भाग—१	उलंघन करता है, आज्ञा भंग करने से वह मेरा दोषी है अतः न वह मेरा भक्त है और न मुझे प्यारा है। अर्जुन! कर्म और विकर्म इस प्रकार हैं :- १. अहिंसा - किसी भी प्राणी को तन-मन-वाणी किसी से भी दुःख न देना अहिंसा है, न स्वयं दुःख दो न किसी के द्वारा दिलवाओ तथा हिंसा की सलाह भी मत दो। अहिंसा परम धर्म है व इसके विपरीत हिंसा करना विकर्म है २. सत्य - सत्य बोलना कर्म है और झूठ बोलना विकर्म है। सत्य बोलो प्रिय बोलो व अप्रिय सत्य मत बोलो। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और झूठ के समान कोई पाप नहीं है - शास्त्र वेद पुराणों में यही बात कही गयी है ३. अस्तेय - अन्न, वस्त्र, धन, ज़मीन आदि किसी की भी चोरी न करना कर्म है व चोरी करना विकर्म है। भगवान की आज्ञा मानना ही कर्म है और आज्ञा न मानना विकर्म है ४. ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य का पालन करना कर्म और अनाचार, दुराचार, व्यभिचार करना विकर्म है ५. अपरिग्रह - अन्न, वस्त्र, धन, ज़मीन, मकान आदि का बहुत संग्रह नहीं करना चाहिये, यह कर्म है तथा इनका संग्रह विकर्म है ६. अक्रोध - माता-पिता व गुरु द्वारा समझाने के लिये एवं हितार्थ किये जाने वाला क्रोध कर्म है तथा हिंसा वृत्ति से किये जाने वाला क्रोध विकर्म है ७. गुरु शुश्रूषा - तन-मन-वाणी से गुरु की सेवा करके विद्याध्ययन करना कर्म है और गुरु का तिरस्कार करना विकर्म है ८. शौचं - तन-मन-बुद्धि की शुद्धि करना कर्म है। स्नान से तन की, सत्य बोलने से मन की, विद्योपार्जन एवं षट्क सम्पदा से अन्तःकरण की तथा आत्म-ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है - अपने स्वरूप का अज्ञान ही अशुद्धि है। धन की शुद्धि आय के दसवें भाग के दान से व भवन की शुद्धि सफाई इत्यादि से होती है ९. संतोषं - अपनी नीति-न्याय की कमाई में संतोष कर्म व असंतोष विकर्म है क्योंकि सबको अपने भाग्यानुसार ही प्राप्त होता है १०. आर्जवम् - सबसे प्रेम और सरल स्वभाव से मिलना कर्म है ११. अमानित्वम् - सबको सम्मान देना और अपना सम्मान न चाहना ही कर्म है। भगवान कहते हैं कि जो सबको सम्मान देता है और स्वयं अमानी रहता है वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है १२. अदम्भित्वम् - ढोंग करना विकर्म है १३. आस्तिकत्वम् - ईश्वर की वाणी वेद है, वेद और गुरु मे पूरा विस्वास करने को आस्तिकत्वं कहते हैं व इसके विपरीत ईश्वर और गुरु की वाणी को न मानना विकर्म है। वेद-विरुद्ध कर्म नहीं करना चाहिये, वेद-विहित कर्म ही करना चाहिये **अकर्म** - जिसमें कर्म और विकर्म दोनों न हों उसको अकर्म कहते हैं। हमारा जीवात्मा तो द्रष्टा-साक्षी मात्र है उसमें कर्म नहीं है, न तुम कर्म करते हो न करवाते हो, सारे कर्म शरीर में ही हैं। **भगवान कहते हैं कि :-** ये जीवात्मा मेरा ही अंश है इसलिये उसका नाश नहीं होता, वह अमल, चेतन यानि ज्ञान स्वरूप और सुखराशि है। ये मेरा ही सनातन अंश है। आत्मा का न जन्म होता है और न मरण। अर्जुन! तुम जीवात्मा हो , तुम अकर्म और द्रष्टा-साक्षी हो। जो ज्ञानी हैं व अपनी आत्मा जानते हैं वे ऐसा ही समझते हैं कि मैं कुछ नहीं करता हूँ, सभी कर्म दे०इ०म०बु०प्राण में हैं, मैं तो इनका द्रष्टा-साक्षी हूँ ।।
13	13 Sep 2013	35	कर्म विकर्म और अकर्म भाग—२	**अर्जुन! कर्म, विकर्म और अकर्म को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति अत्यन्त गूढ़ है।** जो वेद-विहित कर्म हैं उन्हें **कर्म** धर्म अथवा पुण्य कहते हैं और वेद-विरुद्ध कर्म को **विकर्म**, अधर्म अथवा पाप कहते हैं। वेद भगवान की वाणी है जो इस प्रकार है :- १-अहिंसा २-सत्य ३-अस्तेय ४-ब्रह्मचर्य ५-अपरिग्रह ६-अक्रोध ७-गुरु शुश्रूषा ८-शौचं ९-संतोषं १०-आर्जवम् ११-अमानित्वं १२-अदम्भित्वं १३-आस्तिकत्वं। वेद में विधान ईश्वर की आज्ञा है **अकर्म** हमारा तुम्हारा आत्मा अकर्म है यानि आत्मा में किसी प्रकार का कर्म नहीं है। सभी कर्म दे०इ०म०बु०प्रा० में होते हैं, आत्मा द्रष्टा-साक्षी है व हमारा तुम्हारा स्वरूप आत्मा है। अर्जुन! दे०इ०म०बु०प्रा० प्रकृति व प्रकृति के 'सत्-रज-तम्' ३ गुणों से बनते हैं, आत्मा तो इन सबका द्रष्टा-साक्षी व अकर्म है अतः जो कोई भी अपने को दे०इ०म०बु०प्रा० मानता है वह विमूढ़ और अज्ञानी है। जीवात्मा मेरा अंश होने से मेरा ही स्वरूप है और ये दे०इ०म०बु०प्रा० तो प्रकृति के अंश हैं इसलिये सारा संसार प्रकृति-रूप यानि प्रकृति ही है। देह अपना स्वरूप नहीं है जीवात्मा अपना स्वरूप है, स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि शरीर माया से बने हैं। जीवात्मा इन सब शरीरों में है परन्तु शरीर नहीं है। ये शरीर **मन्दिर** हैं और शरीरों के भीतर बैठकर देखने वाला जीवात्मा **देव** है। देव एक है जो दिखाई नहीं पड़ता, वह देखता है। शरीर ही दिखाई पड़ते हैं व कर्म सारे दे०इ०म०बु०प्रा० में ही होते हैं, द्रष्टा में कर्म नहीं होते अतः जो शरीरों के भीतर बैठकर देख रहा है वह देव है, वह **'देव'** यानि **जीवात्मा** ही अपना स्वरूप है ये शरीर अपना स्वरूप नहीं है // अर्जुन! निश्चय ही प्रकृति में ही सारे कर्म हैं क्योंकि दे०इ०म०बु०प्रा० प्रकृति से ही बने हैं, आत्मा इनका द्रष्टा-साक्षी और अकर्म है। दृश्य आने-जाते रहते हैं पर द्रष्टा सदा एक समान रहता है। जा०-स्व०-सु० आते-जाते हैं पर हम इन तीनों को देखते हैं, ये माया मात्र हैं, आत्मा तो इनको देखने वाला है ये सब कर्म तो माया राज्य (प्रकृति) में हो रहे हैं झूठे ही। माया राज्य में रोज़ नये-नये खेल होते हैं पर जीवात्मा वही रहता है। आत्मा का जन्म-मरण नहीं होता। अर्जुन! हमारा स्वरूप जीवात्मा है, जो अपने को द्रष्टा-साक्षी जीवात्मा जानता है वही ज्ञानी है। आत्मा तो नित्य मुक्त ही है, केवल आत्मा को जानना ही कर्तव्य है। हमारा स्वरूप जीवात्मा है हम ये शरीर नहीं हैं, हम इसमें रहते व इसको देखने वाले द्रष्टा-साक्षी जीवात्मा हैं। द्रष्टा कभी दृश्य नहीं होता। हमारी अखण्ड ज्ञान दृष्टि का कभी लोप नहीं होता। **द्रष्टा ब्रह्म है, दृश्य माया है तीसरा कुछ नहीं है - सभी वेदान्तों का यही निर्णय है।** जा०-स्व०-सु० कार्य-कारण रूप माया है जो आती-जाती रहती है व हम द्रष्टा ब्रह्म हैं जो सदा एक समान रहते हैं // **ब्रह्म का स्वरूप 'सत्-चित्-आनंद' है, हे जीव! वही तेरा स्वरूप है।** तुलसीदासजी कहते हैं कि :- जो ब्रह्म है वही तू है, तुझमें और उसमे कोई भेद नहीं है जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश सूर्य से भिन्न नहीं है ऐसे ही ब्रह्म और जीव भिन्न नहीं हैं दोनों एक ही हैं अतः अर्जुन! तुम अपने सच्चिदानंद स्वरूप में स्थित रहो और माया का खेल (दे०इ०म०बु०प्रा०/जा०-स्व०-सु०) देखते रहो। इस जगत को झूठा ही जानो, ये दृश्य जगत लीला क्षेत्र है द्रष्टा तो ज्यों का त्यों ही रहता है ।।
14	14 Sep 2013	30	**ब्रह्म** का **अस्ति भाति प्रिय** स्वरूप	वेद कहता है कि संसार में **'अस्ति भाति प्रिय नाम रूप'** ये ५ वस्तुएं हैं - *'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्, आदि त्रयं ब्रह्म रूपं जगत रूपं ततो द्वयं'* - आदि के तीन **ब्रह्म** का स्वरूप हैं तथा शेष दो यानि 'नाम और रूप' **जगत** का स्वरूप हैं। स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र सब नाम हैं और इन नामों से जानने में आने वाले सब रूप हैं तीसरा पदार्थ कुछ नहीं है। जैसे कण-कण में आकाश समाया हुआ है वैसे ही सर्व **'देश-काल-वस्तु'** में 'अस्ति भाति प्रिय' व्यापक है, समाया हुआ है। जो बनता-बिगड़ता रहता है उसका नाम जगत है पर जगत की कोई सत्ता नहीं है, 'अस्ति भाति प्रिय' की सत्ता है। 'अस्ति भाति प्रिय' का दूसरा नाम 'सत्-चित्-आनंद' है। अस्ति = **सत्** = जो सदा रहता है, भाति = **चित्** = अनंत अखण्ड ज्ञान, प्रिय = **आनंद** = अनंत अखण्ड आनंद का सिन्धु, इस प्रकार 'अस्ति भाति प्रिय' सर्वत्र 'सत्-चित्-आनंद' के रूप में समाया है अतः **हमारा तुम्हारा स्वरूप 'अस्ति भाति प्रिय' है** यानि **ब्रह्म ही हमारा स्वरूप है।** जैसे घट-मठ के भीतर घटाकाश-मठाकाश और इनके बाहर परिपूर्ण महाकाश में भेद नहीं है वैसे ही हमारा आत्मा व्यापक है। आत्मा चेतन आकाश है जो इतना सूक्ष्म है कि जड़ भूताकाश में भी प्रविष्ट है और इतना महान है कि भूताकाश से भी अनंतगुना बड़ा है। आकाश की तो उत्पत्ति होती है पर वेद में ब्रह्म की तो उत्पत्ति नहीं बताई। वेद कहता है कि उस परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ । जो सबको अवकाश देता है उसे आकाश कहते हैं। आकाश से वायु→अग्नि →जल→पृथ्वी→औषधियाँ (आम, अमरूद, ऑवला, पीपल आदि)→अन्न (गेहूँ, जौ, चना आदि)→ शुक्र/वीर्य उत्पन्न हुआ ।। शुक्र अन्न की ७वीं धातु है, **अन्न** →रस→रक्त→माँस→मेदा→अस्थि→मज्जा→ **शुक्र** (शुक्र=तेज, वीर्य=बल, बीज=प्रजनन शक्ति)। जीव अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से जीते है फिर अन्न में ही लीन हो जाते हैं // कृष्णयजुर्वेद-गर्भोपनिषद का सविस्तार वर्णन //
15	15 Sep 2013	29	⊕		हे भारत! **'भा'** नाम **'ज्ञान'** का है, ज्ञान में प्रीति होने से उसका नाम **'भारत'** है, अर्जुन तुम्हारे मन में ज्ञान की प्रीति है इसलिये हम तुम्हें भारत कहते हैं। **'अर्जुन'** नाम तुम्हारा इसलिये भी है क्योंकि तुम निश्छल और निष्कपट हो तथा अनेक जन्मों में तुमने मेरी भक्ति की है जिससे अर्जित पुण्यों के फल स्वरूप तुम्हें मेरा दर्शन और सानिध्य प्राप्त हुआ है। अर्जुन! तुम्हारे परम कल्याण का उपाय मैं बताता हूँ तुम सावधान मन से उसका श्रवण-मनन-निधिध्यासन करो और उसको धारण करो। **गीता - १५/१६** इस लोक में **क्षर** और **अक्षर** दो पुरुष हैं। आँखों से दिखाई पड़ने वाले मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी भूत-प्राणी क्षर-पुरुष हैं। क्षण-क्षण में विनाश को प्राप्त होने वाले को 'क्षर' कहते हैं तथा जो उत्पन्न होते हैं उन्हें **'भूत'** कहते हैं। ये भूत विनाश की धारा में बहे चले जा रहे हैं जैसे गंगा का प्रवाह। ये विनाश की धारा अपने सच्चिदानंद स्वरूप में मिलने पर ही रुकेगी जहाँ से संसार उत्पन्न हुआ है वैसे ही जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर ही विश्राम पाती हैं। समुद्र का खारा जल वाष्प बनकर बादल बन जाता है व ये बादल सब जगह जा-जाकर वर्षा करते हैं और नदियों, तालाबों, कुओं को शुद्ध जल से भर देते हैं जिससे सभी भूत-प्राणियों का जीवन है।

16	16 Sep 2013	32	संसार में ५ अंश हैं — **अस्ति भाति प्रिय** और **नाम-रूप**	**वेद कहता है कि संसार में ५ वस्तुऐं हैं :-** *'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश अन्तकम्'* । इसमें **'अस्ति भाति प्रिय'** तो **ब्रह्म** का स्वरूप है और **'नाम-रूप' जगत** का स्वरूप है। 'अस्ति भाति प्रिय' का अर्थ होता है 'सत् चित् आनंद' - दोनों ही भगवान के नाम हैं, नाम और रूप को ही जगत कहते हैं। 'स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत' नाम और रूप दो ही हैं। प्रत्येक नाम-रूप में 'अस्ति भाति प्रिय' रूप से ब्रह्म ही समाया हुआ है। सभी नाम-रूप माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं, 'अघटन घटना पटीयसी' - असम्भव को सम्भव बना देना माया का काम है। ये संसार माया रचित हैं व हर शरीर के नाम और रूप अलग-अलग हैं। शरीरों के समूह को ही जगत कहते हैं। **'अस्ति भाति प्रिय' के बिना नाम-रूप की कोई सत्ता नहीं है।** ब्रह्म तो आकाश के समान सब नाम-रूपों में व्यापक है दृ० जैसे माटी **'कारण'** है और माटी के **'कार्य'** घट-मठ हैं, एक माटी के अनगिनत घट-मठ हैं। एक माटी सभी घट-मठ में समायी हुई है, इनमें माटी ही सत्य है क्योंकि यदि घट-मठ से माटी निकाल ली जाये तो घट-मठ नहीं बचेंगे दृ० ऐसे ही सुवर्ण से अनेकों आभूषण बनते हैं इनमें सोना तो एक है पर संसार में कितने आभूषण हैं उनकी गिनती नहीं है। सोना एक है व आभूषण अनेक हैं, इनमें सोना सत्य है व आभूषण झूठे हैं क्योंकि न वे आदि में हैं और न अन्त में हैं केवल मध्य में ही आभूषण हैं जो सुनार की कल्पना मात्र हैं, सोना निकालने पर कहीं कोई आभूषण नहीं है दृ० इसी प्रकार जल एक है और लहरें अनेक हैं, एक जल हर लहर में समाया हुआ है, जल के बिना लहरें हैं ही नहीं अतः जल सत्य है और लहरें झूठी हैं। यद्यपि लहरें दिखाई पड़ती हैं पर वे सत्य नहीं हैं, सत्य तो सदा रहता है पर झूठी चीज़ सदा नहीं रहती। लहरों को पकड़ने पर जल ही हाथ में आता है क्योंकि जल सत्य है व लहरें आँखों का धोखा है। इसी प्रकार से **'अस्ति भाति प्रिय'** सच्चिदानंद भगवान है, माया रूपी पवन के निमित्त से ये जगत लहरों के समान उत्पन्न हो गया है अतः **ब्रह्म सत्य है** - *'मयि अखण्ड सुखाम् बोघउ बहुधा विश्व बीचियाँ, उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया मारुत् विभ्रमात्'* - मुझ अनंत अखण्ड आनंद सिन्धु में माया रूपी पवन के निमित्त से बहुत सी विश्व रूपी लहरें उत्पन्न होती हैं और फिर विलीन हो जाती हैं फिर मैं आप अकेला ही रह जाता हूँ इसलिये ब्रह्म सत्य है व जगत तरंग रूप है, झूठा है। जिस प्रकार सुवर्ण के बिना आभूषण, जल के बिना लहर और माटी के बिना घट-मठ नहीं रह सकते उसी प्रकार ब्रह्म के बिना जगत नहीं रह सकता है // 'घट है' → इसमें घट झूठा है और **'है'** पना ब्रह्म का है, है = **अस्ति** = सत्, सत् हमेशा रहेगा, घट नाशवान है। 'घट भासता है' → इसमें **'भासना'** ब्रह्म का है, भासता = **भाति** = चित् तथा 'घट प्रिय है' → इसमें **'प्रियता'** ब्रह्म की है, **प्रिय** = आनंद // घट-मठ के नष्ट होने पर माटी रह जायेगी फिर 'माटी है, माटी भासती है व माटी प्रिय है' क्योंकि माटी की उत्पत्ति जल से होती है इसलिये माटी के नाश होने पर जल रह जायेगा फिर 'जल है, जल भासता है, जल प्रिय है' किन्तु **'अस्ति भाति प्रिय' सदा बना रहता है** इस प्रकार जल के बाद क्रमशः अग्नि, वायु और आकाश के नाश होने पर अन्त में हमारा आत्मा अथवा ब्रह्म ही शेष रहता है क्योंकि वेद में आत्मा की उत्पत्ति आत्मा अथवा ब्रह्म से बतायी है इस प्रकार हमारा तुम्हारा स्वरूप **'अस्ति भाति प्रिय'** या **'सत्-चित्-आनंद'** है जो सदा रहता है व नाम-रूप उत्पत्ति-नााशवान हैं ।।	
17	17 Sep 2013	39	**क्षर** और **अक्षर** पुरुष	**गीता : अ०१५ १६** :: अर्जुन! इस संसार में दो पुरुष हैं, एक **'क्षर'** पुरुष है और दूसरा **'अक्षर'** पुरुष है। जो उत्पन्न होते हैं उन्हें भूत कहते हैं। सभी भूत-प्राणी **क्षर** हैं क्योंकि उनका क्षण-क्षण में नाश हो रहा है। जन्म लेते ही मृत्यु इन शरीरों को खाना आरम्भ कर देती है और अन्त में इनको समाप्त कर देती है अतः सभी भूत-प्राणी क्षर हैं तथा जो कपट रूप है, छल है वह प्रकृति अथवा माया **अक्षर** है। इस माया से ही ये संसार उत्पन्न होता है। माया सत्य को छिपाती है और अविलम्ब झूठा संसार दिखाती है पर सामग्री कुछ नहीं लेती, असम्भव को सम्भव करके दिखा देती है इसीलिये उसका नाम माया है। माया क्षण मात्र में ये जगत बना देती है - इन्द्रजालवत्। भगवान राम ने अपना शरीर भी अपनी इच्छा से रच लिया और बाल्य काल में कौशल्या अम्बा को रोम छिद्र में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड दिखा दिये। इसी प्रकार से भगवान कृष्ण ने यशोदा मैया को अपना विराट रूप दिखाया तथा गीता अध्याय ११ में भगवान ने अर्जुन को भी अपना विराट रूप दिखाया है व अर्जुन ने विराट रूप की स्तुति भी की है। भगवान ने अर्जुन को 'उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय' लीला भी दिखलायी जिसे देखकर अर्जुन भयभीत हो गया तो भगवान ने अर्जुन को पहले अपना चतुर्भुज रूप दिखाया परन्तु फिर भी अर्जुन को अशान्त देखकर भगवान अपने द्विभुज रूप में आये तब अर्जुन शान्त हुआ। भगवान अपनी इच्छा शक्ति 'माया' से ये संसार बनाते हैं इसलिये ये जगत झूठा है उसी प्रकार जैसे जागृत में स्वप्न नहीं रहता व स्वप्न में जागृत का जगत नहीं रहता और जब गाढ़ निद्रा में सो गया तो जागृत-स्वप्न दोनों का जगत खत्म। निद्रा *'कारण-माया'* है और जागृत-स्वप्न *'कार्य-माया'* है। जागृत-स्वप्न अथवा कार्य-माया को **क्षर** कहते हैं और निद्रा अथवा कारण-माया को **अक्षर** कहते हैं। प्रतिदिन सुषुप्ति से ये जगत उत्पन्न होता है और उसी में विलीन हो जाता है। सभी भूत-प्राणी **क्षर** हैं और सुषुप्ति अथवा कूटस्थ, कपट-रूप, कारण माया **अक्षर** है। भगवान ने बताया कि हे अर्जुन! इस माया को हम आप देखने वाले है। क्षर-अक्षर अज्ञान-रूपा माया हैं तथा मैं ही इस क्षर-अक्षर माया को देखता हूँ ।।	
18	18 Sep 2013	32	जगत **सीता–राम** का ही स्वरूप है	भगवान श्री राम और सीता को शास्त्रों में जगत का माता-पिता बताया है इसलिये सारा जगत सीताराम की सन्तान भयी। सीताराम की सन्तान सीताराम का ही रूप होती है उनसे जुदा नहीं होती है वैसे ही जैसे क्षत्रिय और ब्राह्मण की सन्तान क्षत्रिय और ब्राह्मण ही होगी, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत सबमें यही नियम देखने में आता है। जगत के माता-पिता सीताराम हैं इसलिये सारा जगत सीताराम का ही स्वरूप है। सीताराम से भिन्न कुछ भी नहीं है। तुलसीदासजी ने सारी रामायण में सीताराम का ही स्वरूप बताया है .. सीताजी का स्वरूप एवं वन्दना .. : जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाली, सर्व दुःखों को हरने वाली, सबका कल्याण करने वाली, राम को अत्यन्त प्यारी सीता को हम दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत आदि व भगवान के सभी अवतार सब जगत के अन्तर्गत् आ जाते हैं। जितना भी नाम-रूप है उसे जगत कहते हैं। जगत के अन्तर्गत् भगवान के और हमारे शरीर ही आते हैं भगवान और हम जीव नहीं आते हैं। सीता ईश्वर और जीव को उत्पन्न नहीं करती है, सीता ने केवल शरीर ही उत्पन्न किये हैं। शरीर जन्में हैं तो उनकी एक दिन मृत्यु भी होगी तथा ईश्वर और जीव जन्में नहीं हैं तो उनका मरण भी नहीं होगा। हम राम के अंश है, राम ईश्वर हैं अतः **ईश्वर का अंश होने से हम अविनाशी हैं**, ईश्वर चेतन यानि ज्ञान स्वरूप है तो **हम भी ज्ञान स्वरूप हैं**, ईश्वर निर्मल और आनंद सिन्धु हैं तो **हमारा स्वरूप भी निर्मल और सुख-सिन्धु है** अतः सभी जीव ईश्वर के अंश हैं और सब शरीर सीता के अंश हैं अर्थात् सीता का रूप हैं। ईश्वर के शरीर ही सीता ने बनाये हैं ईश्वर को नहीं है। **तुलसीदासजी भगवान राम की स्तुति इस प्रकार करते हैं** - *'श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी, वो सृजति पालक संघरति रुख पाये कृपा निधान की'* - हे राम! तुम ईश्वर हो और जानकीजी महामाया शक्ति हैं। राम की सत्ता-स्फूर्ति पा करके सीताजी ही जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करती हैं और राम तो ब्रह्म हैं। ईश्वर और जीव दोनों के शरीर सीताजी ने बना दिये और स्वयं भगवान राम सबके शरीरों के भीतर बैठ कर सबकी आँखों से देखने लगे अतः शरीर सीता है तथा सच्चिदानंद ब्रह्म जीव बनकर देख रहा है इसलिये हमारा तुम्हारा स्वरूप तो राम हो गया, इसी का नाम जीव है और हमारे तुम्हारे शरीर सीता हो गये अतः सीताराम के सिवा तीसरा कोई है ही नहीं .. **सच्चिदानंद ब्रह्म राम का स्वरूप** .. : अखिल विश्व, ब्रह्मादिक् देवता व असुर जिसकी माया के वश में है, जिसकी सत्ता से झूठा जगत भी सत्य जैसा लग रहा है जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है ऐसे ही राम रूपी रज्जु में जगत (रूपी सर्प झूठा ही) भास रहा है। भव सागर से तारने के लिये जिसके चरण नौका हैं, जो ईश्वर हैं, सच्चिदानंद ब्रह्म हैं, जो सारे दुःखों का हरण करते हैं उन भगवान राम की हम वन्दना करते हैं। भगवान की इच्छा शक्ति ही महामाया शक्ति है। सबके शरीर सीता ने बना दिये इसलिये वे सीता का स्वरूप हैं व सबकी आँखों से सच्चिदानंद ब्रह्म ही जीवरूप से बैठकर देख रहा है वह राम का स्वरूप है अतः हम तुम ईश्वर के अंश होने से राम के स्वरूप हैं व शरीर सीता का अंश हैं इसलिये शरीरों का ही जन्म होता है हमारा नहीं। हमारा आपका स्वरूप जीव है तो मृत्यु की सम्भावना भी नहीं है। भ० गीता में **श्री भगवानुवाच** :- *'न जायते म्रियते वा ... हन्यमाने शरीरे' (२.२०)* - हे अर्जुन! जीवात्मा का जन्म ही नहीं होता तो मृत्यु किस प्रकार होगी, मृत्यु तो उसको मारेगा जिसका जन्म होगा। शरीर का जन्म हुआ है वह भी महामाया शक्ति सीताजी ने किया है। माया ने बिना सामग्री के क्षण मात्र में सारा संसार बना दिया है। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड और उनमें ये शरीर रूपी पिण्ड माया क्षण मात्र में बना देती है दृ० *'जागृत माहि स्वप्न नहिं जैसे, स्वप्न माहि जागृत नहिं तैसे । जग प्रपंच इमि मिथ्या जानो, लेश सत्य याको मत मानो ।'* ये जगत माया की रचना है और माया ये जगत क्षण-मात्र में बना देती है, ये झूठा खेल है, माया का नाटक है व हम तुम इस खेल को देखने वाले हर देह के भीतर बैठे हुए राम का स्वरूप हैं ..	

				वेद कहता है कि .. - सदा यही दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि मैं देह नहीं हूँ मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ। निश्चय ही मैं राम हूँ तो राम को कौन मारेगा? राम ही जीव-रूप से सब देहों में बैठकर देख रहे हैं अतः शरीर सीता हैं और जीव राम है ।।	
19	19 Sep 2013	40	क्षर अक्षर और उत्तम पुरुष	**गीता : अ०-१५** १६ :: अर्जुन! इस संसार में दो पुरुष हैं एक **'क्षर'** और दूसरा **'अक्षर'**। संसार में स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत आदि जितने भूत-प्राणी हैं, ये नाम-रूप जगत सब **क्षर** हैं उनका क्षण-क्षण में क्षरण हो रहा है, ये मृत्यु का भोजन हैं, जन्म के साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। दूसरा **अक्षर** है जो इन शरीरों का कारण **'माया'** या **'प्रकृति'** है जो कूटस्थ यानि कपट-रूप है, सत्य को ढाकती है और झूठा दिखलाती है। सत्य ब्रह्म है उसको माया ढाकती है। अर्जुन! मेरी अध्यक्षता में माया बिना सामग्री के ये संसार क्षण मात्र में रच देती है इसलिये ये माया कारण है। जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही माया है, जा०-स्व० *'कार्य-माया'* है और सु० अज्ञान अन्धकार रूप *'कारण-माया'* है। स्वप्न का सूक्ष्म संसार है और जा० का स्थूल संसार है, स्वप्न से जागृत का जगत उत्पन्न होता है जो पुनः स्वप्न में विलीन हो जाता है फिर जा०-स्व० दोनों सुषुप्ति में लय हो जाते हैं १७ :: अर्जुन! उत्तम पुरुष तो इन दोनों से अलग ही है उसको परमात्मा कहते हैं जो तीनों लोकों में प्रविष्ट है व सब देश-काल-वस्तु में समाया है, सारे संसार का आधार अधिष्ठान है, अविनाशी और अव्यय है, उसे ही ईश्वर कहते हैं १८ :: अर्जुन! मैं क्षर और अक्षर दोनों से अतीत हूँ यानि मैं जा०-स्व० एवं सु० (कार्य-कारण माया) से परे हूँ इसलिये मुझको लोक और वेद में पुरुषोत्तम कहते हैं जैसे आकाश सबके भीतर समाया भी है और अलग भी है उसी प्रकार से परमात्मा सबके भीतर भी है, बाहर भी है और असंग है १९ :: जो कोई भी जीव इस प्रकार से मुझ परमात्मा पुरुषोत्तम को जानता है वह सर्व विद् है, सब कुछ जानने वाला है (**विद् धातु के ४ प्रकार हैं** - १. **विद् ज्ञाने** = ये ज्ञान के अर्थ में है, जो सबको जानता है २. **विद् सत्तायाम्** = जो सदा विद्यमान है ३. **विद् विचारणे** = प्रकट ज्ञान ४. **विद् लाभे** = स्त्री पुरुष धन व परमात्मा का ज्ञानरूपी लाभ) जिसने परमात्मा को जान लिया उसे अब कुछ भी जानना शेष नहीं है क्योंकि जीव परमात्मा का ही अंश है। परमात्मा/ब्रह्म को पाने के लिये ही चतुष्ट्य साधन थे जब उसे ही पा लिया तो साधनों की अब क्या आवश्यकता? गुरु की भी अब क्या आवश्यकता? जिस प्रकार नदी पार हो जाने पर नौका और मल्लाह दोनों की आवश्यकता नहीं रह जाती ऐसे ही जब ये जीवात्मा इस संसार से पार हो गया तो वेद-शास्त्र रूपी नौका और गुरु रूपी मल्लाह ये दोनों ही निष्प्रयोजन हो गये। अब भगवान ही हमारा धाम हैं क्योंकि भगवान का घर ही संतान का घर होता है। जिसने वेद, शास्त्र और गुरु के द्वारा जब उस परमात्मा-परम धाम को पा लिया अब उसे कुछ भी जानना-करना-पाना शेष नहीं है, वह अपनी आत्मा को जान गया है कि अपनी आत्मा ब्रह्म है व जो ब्रह्म है वही हमारी आत्मा है माने आत्मा-परमात्मा एक हैं भिन्न नहीं हैं २० :: हे निष्पाप अर्जुन! जो रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मैंने तुम्हें कहा इसे जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कतार्थ हो जाता है तथा अपनी आत्मा में ही तृप्त और सन्तुष्ट हो जाता है उसके लिये अब कुछ भी कार्य शेष नहीं रहा। सुख की इच्छा सब करते हैं, हमारा आत्मा ही सुख-रूप है उसे जान लिया तो बाहर की वस्तुऐं निरर्थक हो जाती हैं क्योंकि बाह्य पदार्थों में प्रीति अपनी आत्मा की ही प्रियता का प्रतिबिम्ब मात्र होता है। आत्मा प्राणों से भी प्यारा है ऊपर है, आत्मा ही सुख-रूप है ।।
20	20 Sep 2013	31	राम का निर्गुण—निराकार स्वरूप निरूपण	अध्यात्म रामायण/प्रथम सर्ग/राम हृदय :: **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** :: *'रामं विद्धि परम ब्रह्म .. . स्वप्रकाशं अकल्मषं'* - राम का निनि० स्वरूप **परम ब्रह्म** है। राम प्रकृति से परे हैं इसलिये उन्हें **परम** कहते हैं तथा सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण होने से उन्हें **पुरुष** कहते हैं, सबसे बड़े को ब्रह्म कहते हैं इसलिये वे ब्रह्म हैं। राम **सत्-चित्-आनंद रूप** हैं, राम **सत्** हैं यानि राम का आदि-अन्त नहीं है अर्थात् इनका जन्म-मरण नहीं होता, ये अनादि-अनंत हैं व सदा रहते हैं इसलिये इन्हें सत् कहते हैं, **चित्** = ज्ञान, राम ज्ञान स्वरूप हैं यानि अनंत-अखण्ड ज्ञान ही सीतावर राम हैं। राम उदय-अस्त रहित ज्ञान के सूर्य हैं जिसमें अज्ञान व अज्ञान जनित मोह नहीं रहता। राम का **आनंद** स्वरूप है जिस आदि-अन्त रहित आनंद सिन्धु का न ये किनारा है और न दूसरा किनारा है अर्थात् राम का स्वरूप **'सच्चिदानंद'** और उदय-अस्त रहित सूर्य हैं। राम एक **अद्वितीय** हैं व सम्पूर्ण **उपाधियों से विनिर्मुक्त** हैं। संसार में जो नाम-रूप दिखाई पड़ रहे हैं ये उपाधियाँ हैं, राम इन शरीरों के बन्धन में नहीं हैं। वे शरीर के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं। जैसे आकाश घट के अन्दर घटाकाश और बाहर महाकाश है पर अखण्ड है वैसे ही राम अखण्ड ज्ञानरूप हैं व जीव-रूप से शरीर के भीतर हैं और ईश्वर-रूप से बाहर हैं। राम **सत्ता मात्र** हैं, ये जगत तो झूठा है, सत्य एक परम ब्रह्म राम ही हैं उन्हें जानकर सुखी हो जाओ। राम इन्द्रियों के विषय नहीं होते व इन्द्रियों और विषयों से परे होने से इन्हें **अगोचर** कहते हैं। राम अनंत-अखण्ड **आनंद के सिन्धु** हैं और **निर्मल** प्रशान्त महासागर के समान **शान्त** एवं **गम्भीर** हैं जिसमे लहरें नहीं उठतीं तथा षट्-विकारों में से एक भी विकार इनमें नहीं है। राम तो नि०नि० हैं इसलिये उनमें घटना-बढ़ना नहीं होता, विकार तो शरीरों में ही होते हैं। राम का नि०नि० स्वरूप **निरंजन** है माने माया से रहित है, माया का निषेध कर दो तो **शुद्ध** राम का स्वरूप ही रह जायेगा। ये शरीर सब माया हैं चाहे ईश्वर के हों अथवा जीव के, शरीर को अंजन या माया कहते हैं। राम आकाशवत् सर्वत्र व्यापक हैं, ऐसा कौन देश-काल-वस्तु है जहाँ राम नहीं हैं। राम हमारी तुम्हारी आत्मा हैं यानि अपना स्वरूप हैं। जीवात्मा रूप से राम ही सब शरीरों में व्यापक हैं, सबके भीतर देखने वाले राम ही हैं पर जीव जानता नहीं। राम ही जिसे बता दें वही जान जाता है। राम द्रष्टा हैं व जगत दृश्य है। हमारी तुम्हारी आत्मा राम का ही स्वरूप है ।।
21	21 Sep 2013	43	आरुणि ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्म विद्या का उपदेश भाग — १	**सामवेद/छा०उ०/६ठा अ० :: आरुणी ऋषि ने पुत्र श्वेतकेतु से पूछा** - क्या तुमने वह विद्या पढ़ी है जिस एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान हो जाता है, जिसके जानने से जो नहीं जाना गया है वह भी जान लिया जाता है, अनदेखा देखा हुआ व अनसुना सुना हुआ हो जाता है? तब पुत्र ने कहा कि हे पिता! ये विद्या तो मैंने नहीं पढ़ी फिर पिता को प्रणाम किया और वह विद्या प्रदान करने की प्रार्थना की इस पर **आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्म विद्या का उपदेश** :- हे पुत्र! जैसे एक माटी के जान लेने से माटी से बने सभी घट-मठ जान लिये जाते हैं कि माटी से जुदा कोई घट-मठ नहीं हैं, घट-मठ केवल वाणी का विकार अथवा कथन मात्र हैं। उनके कण-कण में माटी ही समायी है, माटी निकाल लेने पर कुछ भी नहीं बचेगा, जैसे हे पुत्र! सुवर्ण से बने जो आभूषण हैं वे सुवर्ण से जुदा नहीं हैं, आभूषणों के कण-कण में सुवर्ण ही समाया हुआ है अतः सत्य केवल सुवर्ण ही है, आभूषण तो सुनार की मानस कल्पना मात्र हैं, सुवर्ण तो बना बनाया है वही सत्य है। विभिन्न आभूषणों के नाम-रूप और काम अलग-अलग हैं पर वे सुवर्ण से जुदा नहीं हैं, सुवर्ण निकालने पर कुछ भी शेष नहीं बचेगा तो एक सुवर्ण के ज्ञान से संसार भर के आभूषणों का ज्ञान हो जाता है इसलिये सुवर्ण ही सत्य है, नाम-रूप आभूषण तो सुनार की मानस कल्पना मात्र हैं। आभूषण को गलाने पर वह सोना ही हो जायेगा, तपाने से सोने का नाश नहीं होता अपितु वह कुन्दन हो जाता है। इसी प्रकार से इस संसार का कारण सच्चिदानंद ब्रह्म परमात्मा है वही सत्य है जैसे माटी सत्य है क्योंकि वह पहले से है इसी प्रकार से परमात्मा पहले से ही है। मन रूपी सुनार ने ये संसार गढ़ दिया है अथवा मन रूपी कुम्हार ने ये शरीर रूपी घट-मठ बना दिये हैं, भगवान तो परम सत्य हैं वह पहले से ही हैं। मन कुम्हार है, मन जागृत और स्वप्न तक ही रहता है जहाँ वह जा० और स्व० का जगत बना देता है। सुषुप्ति में मन नहीं रहता तो वहाँ जगत भी नहीं है। ये जगत मन का विलास या वाणी का विकार है। इसी प्रकार इस संसार का कारण सच्चिदानंद ब्रह्म परमात्मा है वही सत्य है जैसे सोना या माटी सत्य है क्योंकि वह पहले से है, हमेशा से है ऐसे ही परमात्मा पहले से ही है, सदा से है। ये जो मन है यही सुनार अथवा कुम्हार है। इस संसार की कल्पना मन ने किया है। जब जा० में मन रहता है तो जा० का जगत बना देता है, स्व० में मन रहता है, स्व० का संसार भी मन ने बनाया है। सुषुप्ति में मन सो जाता है तो संसार भी नहीं रहता इसलिये ये चराचर जगत मन का विलास है। सत्य केवल परमात्मा है, जो सत् है वह चिद् और आनंद भी है। सत्-चित्-आनंद परमात्मा ही परम सत्य है, अखण्ड ज्ञान रूप है व आनंद रूप है और मन रूपी सुनार ने संसार की कल्पना की है इसलिये मन भी झूठा और संसार भी झूठा है। हम आप द्रष्टा साक्षी ब्रह्म हैं, हम मन को भी देखते हैं। मन रहता है तो जा०-स्व० का संसार बना देता है और जब मन सो गया तो संसार भी नहीं रहता पर हम देखने वाले तो सदा रहते हैं। हम मन को देखते हैं, मन की इच्छाओं को भी देखते हैं। मन जा०-स्व० में रहता है तो हम देखते हैं कि मन जा०-स्व० का जगत बनाता है। सुषुप्ति में मन नहीं रहता तो संसार भी नहीं रहता इसलिये संसार मानस है और द्रष्टा चिदानंद ब्रह्म स्वरूप है अतः जा०-स्व०-सु० तीनों को देखने वाले हम तुरीय या चौथे हैं। आत्मा ही सत्य है, आत्मा को ही ब्रह्म या परमात्मा कहते हैं। आत्मा द्रष्टा है और बाकी सब दृश्य माया है। हम द्रष्टा सदा रहते हैं इसलिये सत्य हैं पर ये दृश्य सदा नहीं रहता। जा० का जगत स्व० में नहीं रहता, स्व० का जगत सु० में नहीं रहता और सु० समाधि में नहीं रहती पर हम हमेशा रहते हैं इसलिये हमारा तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है और सारा दृश्य माया मात्र है ← मन माया प्रकृति जगत चार नाम एक रूप, तब लगि ये साँचे लगे नहिं जाने निज रूप → आत्मा के ज्ञान होने पर - ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या

22	22 Sep 2013	29	सीता—राम का स्वरूप निरूपण भाग—१	// **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** :: *'रामं विद्धि परम ब्रह्म ... स्वप्रकाशं अकल्मषं'* - हे हनुमान! राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है, प्रकृति से परे है इसलिये इन्हें **परम** कहते हैं। जो प्रकृति से परे होता है वह पुरुष होता है, जो सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हो उसे **पुरुष** कहते हैं और सबसे बडे को **ब्रह्म** कहते हैं। राम सच्चिदानंद ब्रह्म हैं, **सत्** = जो सदा रहता है क्योंकि इनका जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती, **चित्** = अनंत-अखण्ड ज्ञान रूप हैं, इनका ज्ञान सदा एक समान प्रकाशमान रहता है, **आनंद** = आदि-अन्त रहित आनंद के सिन्धु एवं अद्वितीय हैं। राम सभी उपाधियों से रहित हैं (ये शरीर उपाधियाँ हैं) राम शरीर के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं, राम अगोचर हैं क्योंकि इन्द्रियों के विषय नहीं होते। राम आनंद स्वरूप, निर्मल, तरंग रहित समुद्र के समान एवं षट्-विकार रहित हैं। सब विकार शरीरों में होते हैं, शरीर ही पैदा होते हैं, बढ़ते, बदलते, क्षीर्ण होते और मरते हैं। राम माया से परे, आकाश के समान सर्वत्र व्यापक हैं एवं सबकी जीवात्मा के रूप में सबके भीतर बैठकर राम ही देख रहे हैं। राम सभी जीवों की आत्मा/स्वरूप है। जगत प्रकाश्य है और राम ज्ञान-प्रकाश रूप परम प्रकाशक हैं - इस प्रकार राम का निर्गुण-निराकार स्वरूप है। जीव का निनि० स्वरूप भी राम ही है, सब शरीरों के भीतर होने से वे जीवात्मा हैं और बाहर परिपूर्ण होने से परमात्मा हैं पर असंग हैं जैसे आकाश घट-मठ के भीतर घटाकाश-मठाकाश और बाहर महाकाश कहलाता है // **सीताजी द्वारा निज स्वरूप निरूपण** :: *'माम् विद्धि मूल प्रकृतिं ... सृजामेदमन्वितम्'* हे हनुमान! मेरा स्वरूप मूल प्रकृति है। प्रकृति को ही माया कहते हैं। संसार की उत्पत्ति-पालन-संहार करना मेरा काम है। हे हनुमान! मैं ईश्वर और जीव के शरीरों को ही रचती हूँ, मैं जगत जननी हूँ। जीव-ईश्वर का स्वरूप तो ब्रह्म है इसकी उत्पत्ति मैं नहीं करती हूँ, मैं तो जीव और ईश्वर के शरीर को ही उत्पन्न करती हूँ जीव-ईश्वर को नहीं क्योंकि उनका जन्म नहीं होता। शरीर ही दिखाई पड़ते हैं क्योंकि वे सगुण-साकार हैं जैसे राम-कृष्ण आदि ईश्वर के शरीर व स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि जीव के शरीर। मैं शरीरों को ही जन्म देती हूँ, ईश्वर और जीव के शरीरों के भीतर तो सच्चिदानंद ब्रह्म राम ही हैं, वे नि०नि० हैं उनकी उत्पत्ति नहीं होती है। सारा संसार मेरे द्वारा ही उत्पन्न किया हुआ है इसलिये वह मेरा ही रूप है। राम तो ईश्वर हैं और मैं उनकी महामाया शक्ति हूँ // राम ब्रह्म हैं और सीता माया है तो सारे शरीर सीता के स्वरूप हो गये और सब शरीरों के भीतर बैठकर देखने वाला राम का स्वरूप है, तीसरा कोई नहीं है राम और सीता के सिवा। हमारा स्वरूप देखने वाला है और हमारा शरीर दिखाई पड़ रहा है, शरीर अज्ञान-रूप माया अविद्या है, ये देख सकता नहीं और हम देखते हैं। हम दिखाई नहीं पड़ते क्योंकि निनि० और अदृष्ट हैं तथा शरीर ससा० एवं दृश्य हैं। द्रष्टा और दृश्य दो ही हैं, द्रष्टा राम हैं और दृश्य माया है तीसरा कोई नहीं है। हम सबको अनुभव है कि हम देखने वाले हैं व शरीर सीता हैं। शरीर के नाम-रूप हैं। इस शरीर के भीतर इ०म०बु०प्रा० हैं, वे सब दृश्य हैं। हम इन सबको जानते हैं पर ये सब किसी को नहीं जानते। माया जड़ है व चेतन राम हैं इसलिये **तुलसीदासजी** का यही निर्णय है कि - **सीता और राम के सिवा दूसरा कोई नहीं है। शरीर सीता हैं व देखने वाले राम हैं**, दोनों हाथ जोड़ कर मैं इनको प्रणम करता हूँ	
23	23 Sep 2013	43	आरुणि ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्म विद्या का उपदेश भाग — २	**सामवेद/छा०उ०/६टा अ० :: आरुणी ऋषि को पुत्र श्वेतकेतु से प्रश्न** - हे पुत्र! एक ऐसी विद्या है जिस एक को जानने से सब कुछ जान लिया जाता है। जो नहीं जाना हुआ है, कभी नहीं सुना है, जिसको कभी नहीं देखा है वह क्रमशः जाना, सुना व देखा हुआ हो जाता है। इस पर श्वेतकेतु का अहंकार टूट गया, उसने पिता को प्रणाम किया और बोला कि वह विद्या तो मैंने नहीं पढ़ी अब आप ही मुझे वह विद्या दें। **आरुणी का श्वेतकेतु को ब्रह्म विद्या का उपदेश** :: हे श्वेतकेतु! जैसे एक माटी को जान लेने से संसार भर के घट-मठ जान लिये जाते हैं क्योंकि माटी कारण है, कोई भी कार्य अपने कारण से अलग नहीं होता। माटी कारण **'एक'** है और घट-मठ कार्य **'अनेक'** हैं किन्तु घट-मठ माटी से भिन्न नहीं हैं। ऐसे ही सभी आभूषण कल्पित हैं, एक सोना ही सत्य है। सभी आभूषण सोना रूप ही हैं, सोना कारण है व आभूषण कार्य हैं, बिना सोने के आभूषण कहाँ है? आभूषण तो सोने में नाम-रूप की कल्पना ही हैं। सोना बना-बनाया है व आभूषण सुनार ने बनाये हैं // इसी प्रकार हे पुत्र! सृष्टि के आदि में एक **सत्** ही था दूसरा कुछ नहीं था। जो सत् था वह **चित्** और **आनंद** भी था। सत्-चित्-आनंद को ही ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म से माया/प्रकृति का प्रादुर्भाव हुआ जिससे **'सत्व-रज-तम्'** ३ गुण उत्पन्न हुए फिर इनसे→आकाश→वायु→अग्नि→जल→पृथ्वी→औषधियाँ→अन्न→पुरुष/पशु-पक्षी । संसार के सभी जीव अन्न से जीते हैं। जो जिस जीव के खाने योग्य होता है वही उसका अन्न है। अन्न बहुत पैदा करना चाहिये क्योंकि किसी भी जीव के लिये अन्न और जल से मूल्यवान कोई वस्तु नहीं है। महा प्रलय आने पर सब अन्न पृथ्वी में लय हो जाता है, पृथ्वी जल में→अग्नि में→वायु में→आकाश में→महामाया शक्ति→परम ब्रह्म परमात्मा में लय हो जाती है फिर एक परमात्मा ही रह जाता है क्योंकि परमात्मा की उत्पत्ति नहीं होती इसलिये उसका नाश नहीं होता। सारी सृष्टि परमब्रह्म से उत्पन्न हुई है, जिससे उत्पत्ति होती है उसी में लय भी होती है। हे श्वेतकेतु! जिससे ये सृष्टि उत्पन्न होती है, जिसमें रहती है व जिसमें विलीन हो जाती है वह ब्रह्म है - वही तेरा भी स्वरूप है अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप भी ब्रह्म ही है। पुरुष से छाया उत्पन्न होती है पुरुष उसे देखता है, पुरुष के आश्रित रहती है व पुनः पुरुष में लय हो जाती है। झूठ की निवृत्ति सत्य में ही होती है। जैसे सर्प मिथ्या है और रज्जु सत्य है, मंद अन्धकार में रज्जु के अज्ञान से रज्जु सर्प के रूप में भासता है और जब प्रकाश में रज्जु का ज्ञान हुआ तो झूठे सर्प की निवृत्ति रज्जु में हो जाती है। छाया की निवृत्ति पुरुष में ही होती है - ये नियम है तो *'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परा'* - ब्रह्म सत्य है और जगत झूठा है जीव तो ब्रह्म ही है कोई दूसरा नहीं है। जब झूठा भी सत्य से मिलकर सत्य हो जाता है तो जीव तो सत्य ही है, वह तो उत्पन्न हुआ ही नहीं वह तो ब्रह्म है ही अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप तो स्वभाव से ही जीवात्मा है। भगवान कृष्ण कहते हैं - *'न जायते म्रियते वा कदाचित् ... भ०गी०२.२०'* - जीवात्मा की उत्पत्ति नहीं होती इसलिये मृत्यु नहीं होती, मृत्यु का कारण जन्म होता है - *'जातस्य ही ध्रुवो मृत्युः ... भ०गी०२.२७'* पर ब्रह्म की तो उत्पत्ति नहीं हुई है // ब्रह्म से माया-आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी-औषधियाँ-अन्न-पुरुष उत्पन्न भये हैं। इनकी उत्पत्ति हुई है तो ये ही मरते-२ अपने कारण में पहुँच जायेंगे, ब्रह्म में लय हो जायेंगे। इस प्रकार सारा संसार ब्रह्म में ही लीन होता है - **'तत्त्वमसि श्वेतकेतु'** वही ब्रह्म तू है। जिस प्रकार जल से उत्पन्न होने वाली तरंगें अंत में जल में ही मिलती हैं ऐसे ही ब्रह्म से तरंग के समान उत्पन्न होने वाला ये जगत ब्रह्म में ही लय होता है, हे श्वेतकेतु! वह ब्रह्म ही तेरा वास्तविक स्वरूप है। इस प्रकार आरुणी ने श्वेतकेतु को ६ बार उपदेश किया // **श्रवण-मनन-निधिध्यासन की महिमा** - ज्ञान को पक्का करने के लिये है क्योंकि मरने के बाद भी दूसरे जन्म में भी ये ज्ञान बना रहता है क्योंकि शरीर ही मरता है बुद्धि नहीं मरती, बुद्धि वही रहती है। **आरुणी को श्वेतकेतु को यही ज्ञान दिया है कि** :- हमारा तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है। ब्रह्म से माया के द्वारा ये सृष्टि जिस क्रम से उत्पन्न हुई है उसके विपरीत क्रम से उसी में उसका विनाश हो जायेगा पर हमारी तुम्हारी आत्मा की उत्पत्ति नहीं बतायी इसलिये हमारी आत्मा का विनाश नहीं होता अतः **अपना स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म आत्मा है, मैं देह नहीं हूँ** (स्त्री-पुरुष आदि) **किन्तु देह द्रष्टा आत्मा हूँ - ये पक्का निश्चय करो।** जैसे अज्ञानियों का देह में अभिमान रहता है इसी प्रकार इस देह को हटा कर सत्य आत्मा का अहंभाव करो। मैं देह नहीं हूँ, मैं चेतन आत्मा हूँ, देह को देखने वाला हूँ। देह तो जड़ है व मैं द्रष्टा-साक्षी हूँ - ऐसा सदा विचार करो, सदा द्रष्टा-साक्षी भाव में रहो। मैं साक्षी चेतन माया से परे हूँ ऐसा अभिमान करो। हमारा तुम्हारा स्वरूप 'देव' यानि देखने वाला ब्रह्म है व हमारा शरीर देवालय है। अपने द्रष्टा स्वरूप में तो किसी को संदेह नहीं है ।।	
24	24 Sep 2013	27	सीता—राम का स्वरूप	// **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** :: हे हनुमान! सावधान मन से श्रवण करो। *'रामं विद्धि परम ब्रह्म ... स्वप्रकाशं अकल्मषं'* - राम का निनि० स्वरूप **सच्चिदानंदघन ब्रह्म** है, वह आकाश की तरह **व्यापक** और **अखण्ड** हैं जैसे आकाश घट-मठ के भीतर भी है और बाहर भी है ऐसे ही शरीरों के भीतर रहने से उन्हीं को **जीवात्मा** तथा बाहर परिपूर्ण होने से **परमात्मा** या ब्रह्म कहते हैं पर राम का निनि० स्वरूप अखण्ड है। वे ही जीवात्मा रूप से भीतर बैठकर सब शरीरों की आँखों से देख रहे हैं और सब शरीरों के बाहर होने से वे ही बाहर भी सारे संसार को देख रहे हैं // अब प्रसंग से मेरा भी स्वरूप सुन लो **सीताजी द्वारा निज स्वरूप निरूपण** :: *'माम् विद्धि मूल प्रकृतिं ... सृजामेदमन्वितम्'* - हे हनुमान! मेरा स्वरूप **मूल प्रकृति** है, मुझे ही माया, सीता, राधा या पार्वती कहते हैं। मेरा काम जगत की **उत्पत्ति-पालन-संहार** करना है। जगत के अन्तर्गत् सब शरीर आते हैं, ईश्वर के भी और जीव के भी। ईश्वर के शरीर हैं - राम, कृष्ण, कच्छ, मच्छ, वामन, वराह आदि और स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि जीव के शरीर हैं, दोनों के शरीर मैं ही उत्पन्न करती हूँ। इन शरीरों में बैठकर जो देख रहा है वह तो राम का निनि० स्वरूप है तथा ईश्वर और जीव दोनों के शरीर सब मेरी रचना है। हे हनुमान! राम का जो आकार या शरीर तुम देख रहे हो इसकी रचना मैंने की है ← संक्षेप में राम कथा → सारा दृश्यमान जगत तो मेरी ही रचना है, मेरा ही खेल है।	

			निरूपण भाग–२	पंचभूतों से रचा ये संसार व इसमें ईश्वर और जीव के शरीर आदि दृश्य मेरी ही रचना हैं पर सबके भीतर व्यापक द्रष्टा-साक्षी एक ही है - ब्रह्म/राम । आकाश-वायु-अग्नि-जल आदि पंचभूतों से रचित ये संसार यानि सभी देश व ईश्वर और जीव के शरीर आदि सब मेरी रचना हैं मैं सीता तो एक छाया हूँ, राम पुरुष हैं। पुरुष सत्य होता है व छाया झूठी होती है। वह पुरुष तो सभी स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि के शरीरों में व्यापक एक ही है - वह ब्रह्म/राम है, उसमें कोई व्यवहार नहीं है, वह तो द्रष्टा-साक्षी मात्र है। जो भी खेल हो रहा है वह माया का ही खेल है, अज्ञान की लीला है, दे०इ०म०बु०प्रा० आदि मेरे द्वारा ही रचे हुए हैं। जन्म-मरण देह के, सुख-दुःख मन के एवं भूख-प्यास प्राणों के धर्म हैं - ये सब मेरी ही रचना हैं पर राम तो निनि० हैं व कण-२ में व्यापक हैं, उनमें ये सब कर्म नहीं हैं। सभी कर्म मुझ सीता में ही हैं ←अद्भुत रामायण-सहस्त्रमुख रावण का उल्लेख→	
25	25 Sep 2013	49	नारद–सनतकुमार सम्वाद * नारदजी के अध्ययन का वर्णन १	**सामवेद-छा०उ०-७तवीं अध्याय** **नारद-सनतकुमार सम्वाद** नारदजी ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं, योगी हैं और भगवान के परम भक्त हैं तो भी दुःखी हैं। वेद में लिखा है - *'तरति शोकं आत्मवित्'* - जब तक जीव अपनी आत्मा को नहीं जानता है तब तक वह शोक समुद्र से पार नहीं होता है। नारदजी को केवल अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं था और सब कुछ था उनके पास, इसलिये वे शोक ग्रस्त हुए। जिस आत्मा के ज्ञान से शोक के समुद्र से पार हुआ जाता है उसी आत्मा को जानने के लिये वह अपने बड़े भाई सनत, सनंदन, सनातन व सनतकुमार के पास गये जो ज्ञानी थे तथा वे भी ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे। नारदजी सनतकुमार से बोले हे प्रभो! मुझे अध्ययन कराओ तब सनतकुमार नारद से बोले कि - हे नारद! तुमने जितना अध्ययन किया है पहले वह हमें बताओ, उसके आगे हम बतायेंगे, इस पर **नारद मुनि बोले मैंने जितना अध्ययन किया है वह इस प्रकार है :-** १. **चारों वेद** - सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, इनमें एक लाख मंत्र हैं, वेद में ३ काण्ड हैं- कर्मकाण्ड में ८००००, भक्तिकाण्ड में १६००० व ज्ञानकाण्ड में ४००० मंत्र हैं २. **इतिहास/महाभारत** जो वेदों का ही विस्तार/अनुवाद है तथा इसमें भी १ लाख मंत्र हैं ३. **१८ पुराण** ४. **व्याकरण** (वेदों के छः अंग हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द व ज्योतिष, इनमें व्याकरण प्रधान है क्योंकि ये मुखरूप है, इसके द्वारा ही वेद में प्रवेश सम्भव है। शुद्ध वाणी को व्याकरण अथवा संस्कृत कहते हैं, संस्कृत = शुद्ध वाणी) ५. **पितृं** - पितरों की विद्या ६. **राशिं** - गणित शास्त्र ७. **दैवम्** - देवताओं का उत्पात् ज्ञान जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, विद्युतपात् व भूकम्प आदि तथा उनका उपाय ज्ञान ८. **निधिं** - भूगर्भ विज्ञान ९. **तर्क शास्त्र** - जिसके द्वारा नास्तिक को आस्तिक बना देते है
26	26 Sep 2013	26	सीता–राम का स्वरूप निरूपण भाग–३	// **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** :: हे हनुमान! सावधान मन से श्रवण करो। *'रामं विद्धि परम ब्रह्म ... स्वप्रकाशं अकल्मषं'* - राम का निनि० स्वरूप **सच्चिदानंदघन ब्रह्म** है, वे सारे संसार में व्यापक हैं और हमारा तुम्हारा स्वरूप जो जीव है वह उनकी ही आत्मा है माने राम ही सब शरीरों के भीतर विराजमान हैं। इस संसार की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय मैं करती हूँ। राम तो द्रष्टा-साक्षी मात्र हैं। सब शरीर तो मैं उत्पन्न कर देती हूँ और राम ही सब शरीरों के भीतर बैठकर सबकी आँखों से देख रहे हैं इसलिये सब शरीरों के भीतर बैठकर देखने वाले जीवात्मा के रूप में राम ही हैं। शरीरों के बाहर भी राम हैं, बाहर रहने से उन्हीं को परमात्मा कहते हैं और भीतर रहने से उन्हें ही जीवात्मा कहते हैं, जैसे आकाश घट-मठ के भीतर रहे तो घटाकाश-मठाकाश कहा जाता है और घट-मठ के बाहर रहे तो उसको महाकाश कहते हैं परन्तु आकाश अखण्ड है वह खण्ड-खण्ड नहीं होता इसी प्रकार राम अखण्ड हैं, वही शरीर के भीतर हैं और वही शरीर के बाहर हैं // अब प्रसंग से मेरा भी स्वरूप सुन लो **सीताजी द्वारा निज स्वरूप निरूपण** :: *'मामं विद्धि मूल प्रकृतिं ... सृजामेदमतन्द्रितम्'* - हे हनुमान! मेरा स्वरूप मूल प्रकृति है, मुझे ही माया, सीता, राधा या पार्वती कहते हैं। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करना मेरा काम है। जगत के अन्तर्गत् सब शरीर आते हैं, ईश्वर के भी और जीव के भी। ईश्वर के शरीर हैं - राम, कृष्ण, कच्छ, मच्छ, वामन, वराह आदि और स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि जीव के शरीर हैं, दोनों के शरीर मैं ही उत्पन्न करती हूँ। इन शरीरों में बैठकर जो देख रहा है वह तो राम का निनि० स्वरूप है तथा ईश्वर और जीव दोनों के शरीर सब मेरी रचना हैं ←अद्भुत रामायण-सहस्त्रमुख रावण का प्रसंग→
27	27 Sep 2013	49	नारद–सनतकुमार सम्वाद * नारदजी के अध्ययन का वर्णन २	**सामवेद-छा०उ०-७तवीं अध्याय** **नारद-सनतकुमार सम्वाद** :: **नारद जी द्वारा अपने अध्ययन का वर्णन :-** १. **चारों वेद** - सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, इनमें एक लाख मंत्र हैं, २. **इतिहास/महाभारत** जो वेदों का ही विस्तार है तथा इसमें भी १ लाख मंत्र हैं ३. **१८ पुराण** ४. **व्याकरण** (वेदों के छः अंग हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द व ज्योतिष, इनमें व्याकरण प्रधान है क्योंकि ये मुखरूप है, इसके द्वारा ही वेद में प्रवेश सम्भव है। शुद्ध वाणी को व्याकरण अथवा संस्कृत कहते हैं, संस्कृत = शुद्ध वाणी) ५. **पितृं** - पितरों की विद्या ६. **राशिं** - गणित शास्त्र ७. **दैवम्** - देवताओं का उत्पात् ज्ञान जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, विद्युतपात् व भूकम्प आदि तथा उनका उपाय ज्ञान ८. **निधिं** - भूगर्भ विज्ञान ९. **वाकोवाक्यं/तर्क शास्त्र** - जिसके द्वारा नास्तिक को आस्तिक बना देते है १०. **एकायनं/नीति शास्त्र** - धर्म एवं राजनीति ११. **देव विद्यां/यज्ञ विद्या** - अग्नि हव्य वाहक है जो यज्ञ में देवताओं के निमित्त से डाली गयीं आहुतियों को देवताओं तक पहुँचा देता हैं १२. **ब्रह्म विद्यां** - मैंने उपनिषद, गीता का अध्ययन किया है परन्तु मुझे सम्यक ज्ञान नहीं है १३. **भूत विद्या** १४. **क्षत्र विद्या** - धनुर्विद्या १५. **नक्षत्र विद्या/ज्योतिष** १६. **गारुड़ी/सर्प विद्या** १७. **देवजन विद्या/संगीत** ।। हे भगवन! इतना मैंने अध्ययन किया है जो आपको बता दिया। ये सब मंत्र ही मैं जानता हूँ पर मैं अपनी आत्मा को नहीं जानता। आप जैसे भगवत् दर्शी पुरुषों से मैंने ऐसा सुना है कि जो अपनी आत्मा को जानता है वह शोक सागर से पार हो जाता है और उसे मृत्यु भी नहीं आती, वह मृत्यु के भी पार हो जाता है। मैं आत्मा के अज्ञान से शोक सागर में डूब रहा हूँ अतः हे प्रभो! मुझ डूबते हुए को आत्म-ज्ञान देकर शोक-सागर से पार करो ।।
28	28 Sep 2013	32	अग्नि के दृष्टांत से भगवान का **निर्गुण निराकार** एवं **सगुण साकार** स्वरूप निरूपण	**वेद में भगवान के दो रूप बताये हैं - 'निर्गुण निराकार'** और **'सगुण साकार'** वैसे ही जैसे अग्नि दो प्रकार की होती है निनि० और ससा०। **निर्गुण-निराकार अग्नि** - व्यापक एवं अव्यवहारी है, उससे किसी का कोई काम नहीं बनता। उसमें उष्णता एवं प्रकाश का गुण और आकार प्रकट नहीं है। दूसरी **सगुण साकार अग्नि** है - जब कोई ईंधन में खिंचाकर माचिस लगाता है तो अग्नि प्रकट हो जाती है जिसमें उष्णता और प्रकाश है, जो देखने में आती है। इस प्रकट अग्नि से संसार का व्यवहार होता है। ईंधन में प्रकट होने पर भोजन पकता है, ठण्डी दूर होती है और दीपक में प्रकट होने से प्रकाश में सब काम होते हैं, बिना प्रकाश के घर का अंधेरा दूर नहीं होता। सूर्य में अग्नि प्रकट होने से सारे संसार का अंधकार दूर हो जाता है। जिस प्रकार रात्रि का घोर अंधकार संसार की सभी वस्तुओं को ढाँक लेता है उसी प्रकार अज्ञान आत्मा-परमात्मा को ढाँक लेता है उस अज्ञान-अविद्या को ही योगमाया कहते हैं। जैसे प्रकाश होने पर अंधकार नहीं ठहरता वैसे ही भगवान के निनि० स्वरूप ज्ञानसूर्य के उदय होते ही अज्ञान रूपी अंधकार/माया का नाश हो जाता है और जीव सुखी हो जाता है। जिस प्रकार अग्नि के 'निनि० और ससा०' दो स्वरूप हैं उसी प्रकार आत्मा-परमात्मा के 'निनि० और ससा०' दो स्वरूप हैं। भोजन पकाने के बाद चूल्हा और दीपक बुझा दिये जाते हैं माने प्रकट अग्नि काम सम्पन्न होने पर निनि० अग्नि में समा जाती है। व्यापक अग्नि एक है और प्रकट अग्नि अनेक हैं। संसार का व्यवहार प्रकट अग्नि से ही चलता है इसी प्रकार से भगवान के भी निनि० और ससा० दो स्वरूप हैं। **भगवान का निर्गुण निराकार स्वरूप** :- *'व्यापक ब्रह्म एक अविनाशी सत् चेतन घन आनंद राशि, अस प्रभु हृदय अछत् अविकारी सकल जीव जग दीन दुःखारी '* - व्यापक अग्नि की भाँति ही भगवान व्यापक हैं उसकी न उत्पत्ति है न विनाश, वह हमेशा प्रकाशमान रहते हैं। वे आनंद के समुद्र हैं फिर भी जीव जगत में दीन और दुःखी हैं क्योंकि वे परमात्मा को नहीं जानते। भगवान सभी जीवों के आत्मा हैं। *'यदा यदाहि धर्मस्य ... तदात्मानं सृजाम्यहं'*-भ०गी० ४.७, *'परित्राणाय साधुनाम् ... सम्भवामि युगे युगे'*-भ०गी० ४.८ - जब-जब धर्म की हानि होती है व अधर्म बढ़ता है तब-तब दुष्टों के दलन एवं साधुओं और धर्म की रक्षा के लिये भगवान राम-कृष्ण आदि ससा० रूप में अवतार लेते हैं ।।
29	29 Sep 2013	40	नारद–सनतकुमार सम्वाद * सनतकुमार द्वारा	**सामवेद-छा०उ०-७तवीं अध्याय** **नारद-सनतकुमार सम्वाद** :: **।। नारद जी द्वारा अपने अध्ययन का वर्णन ।।** :: हे भगवन! इतना मैंने अध्ययन किया है जो आपको बता दिया। ये सब मंत्र ही मैं जानता हूँ पर मैं अपनी आत्मा को नहीं जानता। आप जैसे भगवत् दर्शी पुरुषों से मैंने ऐसा सुना है कि जो अपनी आत्मा को जानता है वह शोक सागर से पार हो जाता है और उसे मृत्यु भी नहीं आती, वह मृत्यु के भी पार हो जाता है। मैं आत्मा के अज्ञान से शोक सागर में डूब रहा हूँ अतः हे प्रभो! मुझ डूबते हुए को आत्म-ज्ञान देकर शोक-सागर से पार करो। **तब सनतकुमारजी बोले** :- हे नारद! भूमा सुखरूप है, अल्प में सुख नहीं है जो भूमा है वही सुखरूप है। भूमा को ही जानने की इच्छा करनी चाहिये। जो दे०इ०म०बु०प्रा० का विषय नहीं है वह भूमा तत्त्व है। 'श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण' पाँच इन्द्रियों से क्रमशः 'शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध' पाँच विषयों का ही ज्ञान होता है परन्तु जो भूमा तत्त्व है वह इन्द्रियों और बुद्धि से भी परे है। बुद्धि को भी केवल विषयों तक का ही ज्ञान है इसके आगे बुद्धि भी नहीं जाती। जहाँ इन्द्रियों की पहुँच नहीं है वह भूमा तत्त्व है, वही अनंत सुखरूप है। जो अल्प है वह मर्त्य है। इन्द्रियों के विषय सब अल्प हैं

<table>
<tr><td></td><td></td><td></td><td>भूमा तत्त्व निरूपण

३</td><td>अतः वह मृत्यु रूप हैं। भूमा यानि महान, वह अमृत है। वह भूमा तत्त्व ही हमारा तुम्हारा आत्मा है, वही ब्रह्म है, नारद वही तुम्हारा स्वरूप है। दे०इ०म०बु०प्रा० तो उसकी माया से बन जाते हैं। सबके भीतर बैठकर देखने वाला द्रष्टा-साक्षी ब्रह्म है। ब्रह्म ही आत्मा है, आत्मा ही ब्रह्म है, वह सत् है, अनंत-अखण्ड-ज्ञानरूप आनंद है इसलिये तुम स्वयं को सच्चिदानंद ब्रह्म जानो। विषयों में जो सुख प्रतीत होता है वह इन्द्रिय-विषय सम्बन्ध से उत्पन्न क्षण भर के लिये एकाग्र हुए मन में अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब मात्र है अर्थात् विषय-सुख अपने ही सुख-स्वरूप का केवल आभास है। आत्मा ही देव है जो देखने वाला है बाकी सब दृश्य है। दृश्य नाशवान है द्रष्टा सत्य है। हम-आप द्रष्टा आत्मा हैं तथा जा०-स्व०-सु० जो भी दिखाई पड़ता है वह सब माया है जो आती-जाती रहती है। हम इन सबको देखते हैं पर हम तो वह के वही रहते हैं, हमारा न जन्म है न मरण। सच्चिदानंद अपनी आत्मा का स्वरूप है।</td><td></td></tr>
<tr><td>30</td><td>30 Sep 2013</td><td>27</td><td>*
सीता—राम जगत के माता—पिता हैं
*</td><td>भगवान राम और सीता जगत के माता-पिता हैं। सम्पूर्ण रामायण में इन्हीं का निरूपण किया गया है। सारा संसार राम-सीता की संतान है। जन्म से ही संतान माता-पिता का स्वरूप होती है - मनुष्य पशु पक्षी वृक्षादि सभी में यह नियम देखने को मिलता है। जो कारण होता है उसका कार्य भी वही होगा, सुवर्ण के आभूषण सुवर्ण ही होंगे अतः हम सब सीता-राम की संतान हैं तो हम सीता-राम से जुदा नहीं हो सकते। रामायण में तुलसीदासजी कहते हैं कि सम्पूर्ण जगत सीता-राम का ही स्वरूप है इसलिये मैं अपने माता-पिता सीता-राम को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ // एक पिता के अनेक पुत्र होते हैं उनके गुण-स्वभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। कोई पंडित है, कोई धनवान है, कोई शूरवीर है - सबके स्वभाव अलग-अलग हैं। कोई तपस्वी है कोई दानी, कोई धर्मात्मा है कोई ज्ञानी - पर पिता की प्रीति सब पर बराबर होती है। जो 'पिताभक्त' है उसका रात और दिन माता-पिता की सेवा करना बस एक ही धर्म है। मन वाणी और कर्म से वह पिता की सेवा करता है दूसरा धर्म स्वप्न में भी नहीं जानता, ऐसा पुत्र पिता को प्राणों जैसा प्यारा लगता है यद्यपि वह सब प्रकार से अज्ञानी/अयोग्य है। पिता की सम्पत्ति का अधिकारी वही होता है जो माता-पिता की सेवा में रहता है। संसार में यही देखने को मिलता है कि सेवक सबसे प्यारा होता है // भगवान कहते हैं - इस प्रकार सभी देव दानव मानव त्रिजग अर्थात् अखिल-विश्व मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है व इन सब पर मेरी बराबर दया है परन्तु उन सबमें जो अभिमान व छल-कपट छोड़ कर मन वाणी और कर्म से मेरा ही भजन करता है वह मुझे परम प्रिय है, भगवान के धाम का अधिकारी भी वही होता है ।।</td><td></td></tr>
<tr><td>31</td><td>31 Sep 2013</td><td>34</td><td>*
ओंकार का स्वरूप
*
भाग-१</td><td>सृष्टि के आदि में एक मात्र भगवान ही आप अकेले थे फिर उनकी बोलने की इच्छा हुई तो सर्वप्रथम ओंकार का प्रादुर्भाव हुआ यही संसार का बीज है। भगवान ने कहा हे अर्जुन! सब वेदों में मैं प्रणव यानि ओंकार हूँ, ओंकार से ही सब वेद प्रकट हुए हैं। ये पहले ब्रह्म में समाया हुआ था अर्थात् ब्रह्मरूप ही था तब इसका नाम परावाणी था, जब ये मन में आया तो पश्यन्ति हो गया, कंठ में आने पर मध्यमा हो गया और फिर कंठ से मुख में आकर बाहर बिखर गया तो इसका नाम बैखरी हुआ। ओंकार ने संसार में सब स्वर-व्यन्जनों का रूप धर लिया :-
<table>
<tr><td>कंठ</td><td>=</td><td>अ</td><td>क</td><td>ख</td><td>ग</td><td>घ</td><td>ङं</td><td>ह</td><td>:</td><td>=</td><td>कवर्ग</td></tr>
<tr><td>तालु</td><td>=</td><td>इ</td><td>च</td><td>छ</td><td>ज</td><td>झ</td><td>यं</td><td>य</td><td>श</td><td>=</td><td>चवर्ग</td></tr>
<tr><td>मूर्धा</td><td>=</td><td>ऋ</td><td>ट</td><td>ठ</td><td>ड</td><td>ढ</td><td>ण</td><td>र</td><td>ष</td><td>=</td><td>टवर्ग</td></tr>
<tr><td>दन्त</td><td>=</td><td>लृ</td><td>त</td><td>थ</td><td>द</td><td>ध</td><td>न</td><td>ल</td><td>स</td><td>=</td><td>तवर्ग</td></tr>
<tr><td>ओष्ठ</td><td>=</td><td>उ</td><td>प</td><td>फ</td><td>ब</td><td>भ</td><td>म</td><td>व</td><td></td><td>=</td><td>पवर्ग</td></tr>
</table>
एक ओंकार से इतने स्वर-व्यंजन बन गये। पाणिनीजी ने इन्हें १४ सूत्रों में गूँथा है। इन्हीं से सारे नाम और रूप बन जायेंगे। सुगन्त और तिगन्त की पद संज्ञा होती है जिनसे सब नाम और क्रिया बन जायेंगे। सुगन्त का अर्थ = जो 'सु' से प्रारम्भ हो और 'प' में समाप्त हो, तिगन्त का अर्थ = जो 'ति' से आरम्भ हो व 'न' में अन्त हो। सबके नाम सुगन्त से ही बनेंगे परन्तु केवल नाम से कोई व्यवहार नहीं सिद्ध होता जब तक इनके साथ क्रिया पद न जोड़े जायें। क्रिया पद तिगन्त में बनते हैं। सुगन्त और तिगन्त के मिलाने पर ही उनमें व्यवहार होगा जैसे 'रामः गच्छति, रामः वदति, रामः भक्षति, रामः पश्यति ...' अर्थात् नाम और क्रिया पद मिलाने से वाक्य बनता है और उसी से व्यवहार होता है। इस प्रकार संसार के नाम और रूप इस ओंकार ने ही धारण कर लिये इसलिये सारा संसार ओंकार का ही स्वरूप है। नाम और रूप के सिवा तीसरा और क्या है संसार में? इसलिये भगवान कहते हैं कि ये सारा संसार प्रणव का रूप है। प्रणव ओंकार का नाम है इसे ही प्रकृति कहते हैं। प्रणव रूप होने से माया का प्रकृति भी कहते हैं - अन्त में जिस क्रम से प्रणव की उत्पत्ति हुई है उसके विपरीत क्रम से लय होकर ये पुनः भगवान में ही समा जायेगा व फिर एक अद्वितीय ब्रह्म ही रह जायेगा। ये प्रकृति भगवान की अव्यक्त नामकी शक्ति है इसे ही अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका व परा भी कहते हैं। ब्रह्म में, ब्रह्म को समझाने के लिये ये ओंकार का अध्यारोप किया और फिर मिटा दिया ये अपवाद है फिर शेष एक ब्रह्म ही बचा अर्थात् जिससे ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है फिर जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है और ब्रह्म की तो उत्पत्ति बताई नहीं है ।।</td><td></td></tr>
<tr><td>32</td><td>32 Sep 2013</td><td>25</td><td>⊕</td><td>पाँच माताओं का वर्णन</td><td>1</td></tr>
<tr><td>33</td><td>33 Sep 2013</td><td>44</td><td>*
ओंकार का स्वरूप
*
भाग-२</td><td>भगवान के ज्ञान से आत्मा और परमात्मा का एकत्व हो जाता है, 'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति' यानि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म रूप ही हो जाता है। सृष्टि के आदि में एक मात्र भगवान ही आप अकेले थे फिर उनसे सर्वप्रथम ओंकार का प्रादुर्भाव हुआ यही संसार का बीज है। भगवान ने कहा हे अर्जुन! सब वेदों में मैं प्रणव यानि ओंकार हूँ, ओंकार से ही सब वेद प्रकट हुए हैं। ये पहले ब्रह्म में समाया हुआ था अर्थात् ब्रह्मरूप ही था तब इसका नाम परावाणी था, जब ये मन में आया तो पश्यन्ति हो गया, कंठ में आने पर मध्यमा हो गया और फिर कंठ से मुख में आकर बाहर बिखर गया तो इसका नाम बैखरी हुआ। ओंकार ने संसार में सब स्वर-व्यन्जनों का रूप धर लिया। सब नाम-रूप ओंकार का ही स्वरूप हैं। सभी वेद, शास्त्र, गीता, रामायण आदि स्वर-व्यंजन रूप हैं व ओंकार का ही विस्तार हैं। ओंकार में मुख्य ३ अक्षर हैं - अ = अकार, उ = उकार, म = मकार जिन्होंने विभिन्न त्रिपुटियों का रूप धारण कर लिया जैसे :-
<table>
<tr><th></th><th></th><th>अ = अकार</th><th>उ = उकार</th><th>म = मकार</th></tr>
<tr><td>वेदत्रयी</td><td>→</td><td>सामवेद</td><td>अथर्ववेद</td><td>ऋग्वेद</td></tr>
<tr><td>तीन वृत्तियाँ/गुण</td><td>→</td><td>सात्विक</td><td>राजस</td><td>तामस</td></tr>
<tr><td>तीन भुवन/लोक</td><td>→</td><td>आकाश</td><td>पृथ्वी</td><td>पाताल</td></tr>
<tr><td>तीन मुख्य देवता</td><td>→</td><td>विष्णु (सृष्टि पालक)</td><td>ब्रह्मा (सृष्टि उत्पादक)</td><td>महेश (सृष्टि संहारक)</td></tr>
<tr><td>तीन शरीर</td><td>→</td><td>स्थूल</td><td>सूक्ष्म</td><td>कारण (स्वरूप अज्ञान)</td></tr>
<tr><td>तीन अवस्थायें</td><td>→</td><td>जागृत</td><td>स्वप्न</td><td>सुषुप्ति</td></tr>
<tr><td>पाँच कोश</td><td>→</td><td>अन्नमय</td><td>प्राणमय + मनोमय + विज्ञानमय</td><td>आनंदमय</td></tr>
</table>
हे शंकर! इस प्रकार से ये तीनों रूप व तीनों रूपों से परे जो तुम्हारा निनि० स्वरूप है वह ओंकार अमात्र से बताता है - मात्रा रहित ओंकार को अमात्र कहते हैं अतः ओंकार आपके समस्त और व्यस्त (माने सबसे अलग) दोनों रूपों को बताता है - निनि० और ससा० दोनों को बताता है। फिर इसी ओंकार ने ३ शरीरों का रूप धर लिया - अकार से (जागृत अवस्था) स्थूल शरीर जो नाम-रूप आँखों से दिखाई पड़ रहे हैं, उकार से (स्वप्नावस्था) १६ तत्त्वों के सूक्ष्म शरीर और मकार से (सुषुप्तावस्था) कारण शरीर, स्वरूप अज्ञान यानि अपने स्वरूप को न जानना ही कारण शरीर है। सुषुप्तावस्था या गाढ़ निद्रा घोर अज्ञान-अंधकार रूप व अव्यवहारी है जिससे स्थूल और सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होते हैं तथा जिसमें जागृत और स्वप्न लीन हो जाते हैं। इन्हीं के अन्तर्गत् ५ कोष भी आते हैं - अन्नमय = स्थूल श०, प्राणमय = पाँच प्राण + पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मनोमय = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ + मन, विज्ञानमय = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ + बुद्धि, आनंदमय = कारण श०(सुषुप्तावस्था) ← दृ०-गंगा तट पर महात्मा और काशी नरेश की कथा →</td><td></td></tr>
</table>

34	34 Sep 2013	30		**पाँच माताओं का वर्णन**	2
35	35 Sep 2013	38	* ओंकार का स्वरूप * भाग-३	**सृष्टि के आदि में एक मात्र भगवान ही आप अकेले थे फिर उनसे सर्वप्रथम ओंकार का प्रादुर्भाव हुआ यही संसार का बीज है।** भगवान ने कहा हे अर्जुन! सब वेदों में मैं प्रणव यानि ओंकार हूँ, ओंकार से ही सब वेद प्रकट हुए हैं। ये पहले ब्रह्म में समाया हुआ था अर्थात् ब्रह्मरूप ही था तब इसका नाम **परावाणी** था, जब ये मन में आया तो **पश्यन्ति** हो गया, कंठ में आने पर **मध्यमा** हो गया और फिर कंठ से मुख में आकर बाहर बिखर गया तो इसका नाम **वैखरी** हुआ। ओंकार ने संसार में सब स्वर-व्यन्जनों का रूप धर लिया। स्वर-व्यन्जनों से ही सब नाम और रूप बनते हैं। सब नाम-रूप ओंकार का ही स्वरूप हैं। सभी वेद, शास्त्र, गीता, रामायण आदि स्वर-व्यंजन रूप हैं व ओंकार का ही विस्तार हैं अतः ये स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि सारा संसार नाम और रूपमय है। ओंकार में मुख्य ३ अक्षर हैं - **अ** = अकार, **उ** = उकार, **म** = मकार जिन्होंने क्रमशः सत्व-रजस-तमस ३ गुण, विष्णु-ब्रह्मा-महेश ३ मुख्य देवता, स्थू०-सू०-का० ३ शरीर, जा०-स्व०-सु० ३ अवस्थायें आदि विभिन्न त्रिपुटियों का रूप धारण कर लिया। जा० का स्थूल संसार है, स्व० का सूक्ष्म संसार है तथा सु० कारण शरीर है। सुषुप्ति में जा०-स्व० दोनों नहीं रहते, ये घोर अज्ञान-अंधकाररूप निद्रा अवस्था है, इसे ही आनंदमय कोष कहते हैं। सुषु० में आनंद ही आनंद रहता है क्योंकि वहाँ मन-बुद्धि नहीं रहते सो जाते हैं और सुख-दुःख मन में ही होते हैं अतः सुषु० में न शारीरिक दुःख होते हैं रोग-बीमारी आदि के और न मानसिक दुःख होते हैं इसलिये वहाँ आनंद ही आनंद होता है। जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही माया है। ओंकार का दूसरा नाम प्रणव है। प्रणवरूप होने से ओंकार को प्रकृति कहते हैं व इसी को माया कहते हैं। ओंकार भगवान का सबसे छोटा व सर्वश्रेष्ठ नाम है // ओ३म् भगवान का एक अक्षर का नाम है भगवान कृष्ण कहते हैं कि इसको मुख से उच्चारण करते हुए व मेरा स्मरण करते हुए जो जीव देह का त्याग करता है वह परमगति को यानि मुझे प्राप्त कर लेता है तथा ८४ लाख योनियों में भ्रमण से मुक्त हो जाता है। जैसे समुद्र ही सब नदियों का घर है क्योंकि वहीं से उनकी उत्पत्ति है, एक क्षण के लिये भी रुके बिना जाकर समुद्र में मिलने तक वे चलती ही रहती हैं, सरिताओं का जल समुद्र में जाकर ही अचल होता है। ऐसे ही भगवान का घर ही हमारा घर है तो हम अपने घर पहुँच कर ही विश्राम पायेंगे क्योंकि भगवान ही हमारे माता-पिता हैं, माता-पिता का घर ही पुत्र का घर होता है अतः जब जीव अपने घर यानि भगवान के घर पहुँच जाता है तो वह परम विश्राम पा जाता है // भगवान कहते हैं कि पवित्र ओंकार मुझे पाने का साधन है, ओम् मेरा सबसे छोटा नाम है और सभी वेद ओंकार के ही विस्तार हैं। नाम ही नामी को बताता है। ये ओंकार भगवान का नाम है और भगवान को बताता है, किस प्रकार से बताता है? ये कहता है कि मैं स्वर-व्यंजन रूप नाम हूँ पर नाम को तो ज्ञान होता नहीं तो नामी को ये कैसे बताता है? ये इस प्रकार से बताता है कि - 'जा०-स्व०-सुषु०' इतना ही मेरा स्वरूप है, कार्य-कारणरूप इतनी ही माया अथवा प्रकृति है, जा०-स्व० कार्य है व सुषु० कारण है जिससे जा०-स्व० का संसार उत्पन्न होता है। जा०-स्व०-सुषु० को तो ज्ञान होता नहीं, न ये अपने को जानते हैं और न दूसरे को जानते हैं, ओंकार ने ही जा०-स्व०-सुषु० का रूप धारण किया है अतः ये मेरा यानि प्रकृति का स्वरूप है। स्वर-व्यंजन रूप नाम को ज्ञान नहीं होता और न रूप (शरीर) को ही ज्ञान होता है। इन शरीरों के देवदत्त-ब्रह्मदत्त आदि नाम हैं और शरीर इनके रूप हैं। नाम और शरीर दोनों को ही ज्ञान नहीं है पर हम शरीर के भीतर रहते हैं, हम शरीर के नाम और रूप दोनों को जानते हैं। ओंकार कहता है कि सारा संसार यानि नाम-रूप, दिन-रात, मास-वर्ष, कल्प-युग आदि जितना दृश्य है ये **इदं** तो मेरा स्वरूप हो गया और **तत्** पद से मैं ब्रह्म को बताता हूँ अर्थात् **इदं** यानि जा०-स्व०-सुषु० तो मेरा स्वरूप है और **तत्** यानि जो जा०-स्व०-सुषु० को जानता है वह ब्रह्म है और हे जीव! **तत्त्वमसि**, वही तेरा स्वरूप है, **'वह ब्रह्म मैं ही हूँ'** - जो ऐसा जानता है वह सभी बन्धनों से मुक्त ही है। इस प्रकार से ओंकार ने हमारा स्वरूप ब्रह्म बताया और जा०-स्व०-सुषु० को अपना स्वरूप बताया अतः जो इन तीनों को देखता है वह अथा तो स्वयं सिद्ध है, इसी को तुरीय, चौथा या ब्रह्म कहते हैं वही हमारा स्वरूप है इसलिये अपने को ब्रह्म जानो ।।
36	36 Sep 2013	34		**पाँच माताओं का वर्णन**	3
37	37 Sep 2013	45	* क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ * 1	**सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर के अवतार होने से भगवान श्रीकृष्ण जगतगुरु हैं और जगतपिता भी हैं** क्योंकि भगवान से ही सृष्टि होती है। भगवान ही ब्रह्मा का रूप धारण करके सृष्टि करते हैं यानि ब्रह्मा-रूप से पिता है, विष्णु-रूप से पालक एवं रक्षक तथा शंकर-रूप से संहारक है। ये जगत जिससे उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है। भगवान सबके राजा भी हैं क्योंकि भगवान का शासन सारे संसार पर है। भगवान के भय से सूर्य तपता है, अग्नि जलता है, वायु चलता है, इन्द्र वर्षा करता है व मृत्यु दौड़ा-दौड़ा फिरता है। सर्वदुःख, मृत्यु तथा भव-बन्धन से मुक्ति की कामना से अर्जुन की भगवान के चरणों में प्रपत्ति होने पर **गीता : अ० १३/१-२** **श्रीभगवानुवाच :-** अर्जुन! संसार म **क्षेत्र** और **क्षेत्रज्ञ** दो ही वस्तुऐं हैं। अर्जुन, संक्षेप में मैं तुम्हें सम्पूर्ण ज्ञान दे रहा हूँ, ये सभी शास्त्रों का सार है। इस शरीर में जो **जीवात्मा** रहता है वह **क्षेत्रज्ञ है** वह क्षेत्र को जानता है। ये **शरीर क्षेत्र है** व शरीर को जानने वाला जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है। अर्जुन तू जीवात्मा है, तू शरीर को जानता है पर ये शरीर तुझको नहीं जानता। शरीर को तो ज्ञान नहीं है पर तू ज्ञानवान है जैसे खेत और किसान, खेत के समान ये स्थूल शरीर अज्ञान-रूप पंचतत्त्वों से बना है पर इस शरीर में रहने वाला जीवात्मा किसान के समान ज्ञानवान है। इस स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर है और उसके भी भीतर कारण शरीर है। तीनों क्षेत्र हैं, तीनों को ज्ञान नहीं है। तीनों के भीतर रहने वाला जीवात्मा ज्ञानवान है। ये स्थूल शरीर पंचमहाभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ तत्त्वों से मिलकर बनता है जो इस प्रकार हैं :- **पृथ्वी** से → अस्थि, चर्म, नाड़ी, रोम, माँस **जल** से → मूत्र, श्लेष्म, रक्त, स्वेद, शुक्र **अग्नि** से → क्षुधा, तृष्णा, आलस्य, मोह, मैथुन **वायु** से → हाथ-पैरों का फैलाना-सिकोड़ना, मुठ्ठी बाँधना-खोलना, मुँह खोलना-बन्द करना, स्वाँस लेना-छोड़ना, आँख खोलना-बन्द करना **आकाश** से → काम, क्रोध, लोभ, मोह (अहंता-ममता) भय। २५ तत्त्वों से मिलकर बने इस देह में हम-आप रहते हैं पर हम ये देह नहीं हैं क्योंकि ये हमारा मकान है और हम मकान तो नहीं हो सकते! हम इस देह को जानते हैं क्योंकि हम ही ज्ञानवान हैं पर देह को तो ज्ञान नहीं है। **जो स्वयं को यह देह मानते हैं उनका यह अज्ञान ही उनके जन्म-मरण का कारण है ।।**
38	38 Sep 2013	27		**पाँच माताओं का वर्णन**	4
39	39 Sep 2013	49	* क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ *	**गीता : अ० १३/१-२** **श्रीभगवानुवाच :-** अर्जुन! संसार में **क्षेत्र** और **क्षेत्रज्ञ** दो ही वस्तुऐं हैं। अर्जुन, संक्षेप में मैं तुम्हें सम्पूर्ण ज्ञान दे रहा हूँ, ये सभी शास्त्रों का सार है। इस शरीर में जो **जीवात्मा** रहता है वह **क्षेत्रज्ञ है** वह क्षेत्र को जानता है। ये **शरीर क्षेत्र है** व शरीर को जानने वाला जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है। अर्जुन तू जीवात्मा है, तू शरीर को जानता है पर ये शरीर तुझको नहीं जानता। शरीर को तो ज्ञान नहीं है पर तू ज्ञानवान है जैसे खेत और किसान, खेत के समान ये स्थूल शरीर अज्ञान-रूप पंचतत्त्वों से बना है पर इस शरीर में रहने वाला जीवात्मा किसान के समान ज्ञानवान है। इस स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर है और उसके भी भीतर कारण शरीर है। तीनों क्षेत्र हैं, तीनों को ज्ञान नहीं है। तीनों के भीतर रहने वाला जीवात्मा ज्ञानवान है ।। ये **स्थूल शरीर** - पंचमहाभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ तत्त्वों से मिलकर बनता है जो इस प्रकार हैं :- **पृथ्वी** से → अस्थि, चर्म, नाड़ी, रोम, माँस **जल** से → मूत्र, श्लेष्म, रक्त, स्वेद, शुक्र **अग्नि** से → क्षुधा, तृष्णा, आलस्य, मोह, मैथुन **वायु** से → हाथ-पैरों का फैलाना-सिकोड़ना, मुठ्ठी बाँधना-खोलना, मुँह खोलना-बन्द करना, स्वाँस लेना-छोड़ना, आँख खोलना-बन्द करना **आकाश** से → काम, क्रोध, लोभ, मोह (अहंता-ममता) भय। २५ तत्त्वों से मिलकर बने इस देह में हम-आप रहते हैं पर हम ये देह नहीं हैं क्योंकि ये हमारा मकान है और हम मकान तो नहीं हो सकते! हम इस देह को जानते हैं क्योंकि हम ही ज्ञानवान हैं पर देह को तो ज्ञान नहीं है। जो स्वयं को यह देह मानते हैं उनका यह अज्ञान ही उनके जन्म-मरण का कारण है। **सूक्ष्म शरीर** - स्थूल देह के भीतर **१६ तत्त्वों** (५ कर्मेन्द्रियाँ + ५ ज्ञानेन्द्रियाँ + ५ प्राण + मन + बुद्धि + चित्त + अहंकार) का सूक्ष्म शरीर है जो अपंचीकृत महाभूतों से बना है। अपंचीकृत महाभूतों से बनने वाली **इन्द्रियाँ और उनके विषय** इस प्रकार हैं :- ज्ञानेन्द्रियाँ = **आकाश**→ कान और शब्द, **वायु**→ त्वचा और स्पर्श, **अग्नि**→ नेत्र और रूप, **जल**→ जिह्वा और रस, **पृथ्वी**→ नासिका और गन्ध ।। कर्मेन्द्रियाँ = आकाश→ वाक् और शब्द, वायु→ पाणि और लेना-देना, अग्नि→ पाद और चलना, जल→ उपस्थ और मूत्र विसर्जन तथा पृथ्वी→ गुदा और मल विसर्जन ।। पाँच प्राण = प्राण - शुद्ध वायु/निःस्वाँस, अपान - अशुद्ध वायु/निःस्वाँस व

			2			गुदा से विसर्जन, व्यान - शरीर में व्याप्त, समान - नाभि स्थान में जठराग्नि को दीप्त करना व अन्न-जल का पाचन करके रस-रक्त-माँस-मेदा-अस्थि-मज्जा-शुक्र सप्त धातु की उत्पत्ति, उदान वायु का कंठ स्थान है ये अन्न-जल का विभाजन करती है। चतुष्अन्तःकरण = **वायु से मन** (संकल्प-विकल्प व तीव्र गति), **अग्नि से बुद्धि** (इसमें चेतन का प्रतिबिम्ब प्रकट होता है), **जल से चित्त** (ये चिन्तन करता है) व **पृथ्वी से अहंकार** या अहं भाव उत्पन्न होता है ।। **कारण शरीर** - ये अज्ञान-अंधकार रूप है व हम इसे जानते हैं। अपने स्वरूप को न जानना ही कारण शरीर है। हमारा स्वरूप तीनों शरीरों से अलग हैं तीनों को जानने वाला **'बोधरूप'** हूँ। इन्हीं तीन शरीरों के अन्तर्गत् **जा०-स्व०-सुषु० ३ अवस्थायें** हैं, सुषु० कारण व जा०-स्व० उसका कार्य हैं। इन्हीं तीन शरीरों के भीतर **५ कोश** भी आ जाते हैं (**अन्नमय** → स्थू०श०, **प्राणमय** → ५ कर्मेन्द्रियाँ + ५ प्राण, **मनोमय** → ५ ज्ञानेन्द्रियाँ + मन, **विज्ञानमय** → ५ ज्ञानेन्द्रियाँ + बुद्धि, **आनंदमय** → स्वरूप अज्ञान)। // आदि गुरु शंकराचार्य व हस्तामलक का प्रसंग हस्तामलक द्वारा अपना परिचय - जाति वर्ण नाम रूप आदि सब स्थूल देह में हैं, मैं स्थूल देह में हूँ व इसे जानता हूँ पर मैं ये देह नहीं हूँ। भूख-प्यास, अन्धापन, बहरापन, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आसुरी सम्पत्ति सब सूक्ष्म देह के धर्म हैं। मैं इस सूक्ष्म देह के भीतर रहता हूँ व इसे जानता हूँ पर मैं सूक्ष्म देह नहीं हूँ। प्रिय, मोद, प्रमोद, अज्ञान सब कारण देह के धर्म हैं - मैं तो निर्विकार हूँ, मैं तीनों शरीरों में रहता हूँ, सबको देखता हूँ जानता हूँ पर इन सबसे अलग, व्यापक और सूक्ष्म हूँ, मैं बोधरूप हूँ // भगवान कृष्ण बता रहे हैं कि हे अर्जुन! ये शरीर क्षेत्र है जो पंचतत्त्वों से बना है पर इसमें जो जीवात्मा है वह मेरा ही स्वरूप है। मैं ही शरीरों के भीतर बैठकर देख रहा हूँ। तीन शरीर, तीन अवस्थायें अथवा पाँच कोश एक ही बात है। इन शरीरों में आत्मा रहता है, वह शरीरों को जानता है पर ये शरीर जीवात्मा को नहीं जानते। हमारा स्वरूप जीवात्मा है शरीर नहीं ।।	
40	40 Sep 2013	27				**पाँच माताओं का वर्णन**	5
41	41 Sep 2013	40	* क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ * 3			श्रीमद्भगवद्गीता नर-नारायण का सम्वाद है। **अर्जुनउवाच** - *'कार्पण्य दोषोपहत स्वभावः ... मां त्वां प्रपन्नं'*। **श्रीभगवानुवाच :-** अर्जुन! तुम सावधान मन से श्रवण करो। **गीता : अ० १३/१-२** अर्जुन ये शरीर क्षेत्र हैं और इस शरीर में जो रहता है, इसे जो देखता और जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। शरीर को तो ज्ञान नहीं है जैसे मकान को ज्ञान नहीं है पर मकान में रहने वाला मकान को जानता है ऐसे ही ये शरीर एक मकान या खेत के समान है व हम मकान में रहने वाले ज्ञानवान जीव अथवा किसान के समान हैं। इस दीखने वाले शरीर में ही जाति और वर्णादि हैं पर इनमें रहने वाला जीव चेतन पुरुष इनसे असंग है। दिखाई पड़ने वाला स्थूल शरीर है जो पंचमहाभूतों के पंचीकरण से निर्मित २५ तत्त्वों से बना है स्थूल शरीर संरचना का सविस्तार वर्णन ऊपर प्रवचन ३७ व ३९ के अनुसार। उसके अन्दर सूक्ष्म शरीर है जो अपंचीकृत पंचमहाभूतों के १९ तत्त्वों से बना है। तीनों लोकों में रहने वाले सभी देव दानव मानव पशु पक्षी आदि के शरीर पंचमहाभूतों से ही बने हैं इसलिये वे पंचभूतों से जुदा नहीं हैं जैसे सभी घट-मठ माटी से भिन्न नहीं हैं सूक्ष्म शरीर संरचना का सविस्तार वर्णन ऊपर प्रवचन ३७ व ३९ के अनुसार । सूक्ष्म शरीर (इन्द्रियाँ मन बुद्धि प्राण) में ही सब प्रकार के कर्म होते हैं, इन्हें भी ज्ञान नहीं है। इनके भीतर कारण शरीर है। अपने स्वरूप को न जानना (कि मैं चेतन आत्मा हूँ) ही कारण शरीर है। ऐसे ही जा०-स्व०सु० ३ अवस्थायें हैं, जागृत में स्थूल श०, स्वप्न में सूक्ष्म श० तथा सुषुप्ति में कारण श० है। सुषुप्ति से जा०-स्व० दोनों उत्पन्न होते हैं इसलिये सुषुप्ति कारण है और जा०-स्व० उसके कार्य हैं। २४ घंटे की उम्र तीनों में से किसी की नहीं है, २४ घ्रटे में तीनों बदल जाते हैं। इसी प्रकार अर्जुन मुझ ईश्वर के भी तीन शरीर हैं। जीवों के सभी स्थूल शरीर मेरे स्थूल शरीर में वैसे ही जुड़े हुए हैं जैसे पीपल में पेड़ में शाखा, पत्ते, फूल, फल आदि सब जुड़े होते हैं। यह जगत मेरा विराट शरीर है। पीपल का पेड़ एक है और शाखा, पत्ते, फूल, फल आदि अनगिनत हैं जो उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं। जैसे शाखा, पत्ते, फूल, फल आदि सब पीपल ही हैं पीपल से जुदा नहीं हैं ऐसे ही ये स्थूल जगत मेरा ही विराट स्वरूप है मुझसे विलग नहीं है << म०गी० अध्याय ११ में अर्जुन को भगवान का विराट रूप दर्शन व अर्जुन द्वारा स्तुति >> इसी प्रकार सभी जीवों के सू०श० मुझ ईश्वर के सूक्ष्म-शरीर में जुड़े हुए हैं। मेरे सू०श० का नाम है **'हिरण्यगर्भ'**। ऐसे ही सभी जीवों के अज्ञान-अविद्या-सुषुप्ति रूप कारण-शरीर मेरे कारण-शरीर में जुड़े हुए हैं उसे ही **'अव्याकृत, महामाया** या **प्रकृति'** कहते हैं। अतः सभी व्यष्टि जीवों और समष्टि ईश्वर के तीनों शरीरों के भीतर मैं ही जीवात्मा के रूप में बैठकर देख रहा हूँ। ये सब शरीर क्षेत्र हैं तथा इनमें बैठकर देखने वाले मुझे ही तू क्षेत्रज्ञ जान। अर्जुन क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। क्षेत्र मेरी कार्य-कारण रूप (जा०-स्व०-सु०) माया है तथा इन तीनों को देखने वाला **४था** मैं ही हूँ। मैं और मेरी माया के अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं है अतः यही निश्चय करो कि देखने वाला द्रष्टा मैं हूँ, शरीर के भीतर मुझे ही जीवात्मा और बाहर परिपूर्ण को परमात्मा कहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं है जैसे घटाकाश और महाकाश अभेद हैं। दिखाई पड़ने वाला जा०-स्व०-सु० सब दृश्य-माया है। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, माया-ब्रह्म, द्रष्टा-दृश्य बस दो ही पदार्थ हैं तीसरा कोई नहीं है इनमें द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है तो देखने वाला तो मैं ही हूँ और दिखाई पड़ने वाला मेरी माया है ।।	
42	42 Sep 2013	28				गुरु ही वेद मंत्रों का अर्थ बताते हैं तब भगवान का ज्ञान होता है। भगवान के ज्ञान से जीव भगवत् रूप हो जाता है - *'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, ब्रह्मविद् ब्रह्मैव स्थितः'* - जो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्मरूप हो जाता है, ब्रह्मरूप से ही स्थित हो जाता है - उपनिषद और गीता भी यही कहती है। वेद त्रिकाण्डमय हैं, **'कर्म-उपासना-ज्ञान'** वेद में तीन काण्ड हैं। तीनों का अलग-अलग अभिप्राय भी है। जीव के हृदय में तीन दोष हैं - **'मल-विक्षेप-आवरण'**, मल नाम अनेक जन्मों के पापों का है, विक्षेप नाम मन की चंचलता का है और आवरण नाम ब्रह्म को न जानना इस अज्ञान का है। इन तीनों दोषों की निवृत्ति के लिये भगवान ने त्रिकाण्डमय वेद कहा है। निष्काम कर्म चित्त की शुद्धि के लिये, भक्ति मन की एकाग्रता के लिये और ब्रह्म का विज्ञान मोक्ष के लिये है। सभी वेद-शास्त्रों का यही निर्णय है। वेद जीव यानि जीवात्मा को परमात्मा की प्राप्ति नहीं कराते वरन जीव और परमात्मा के बीच के प्रतिबन्धों को दूर करते हैं। नेत्रों द्वारा सूर्य के दर्शन में जैसे मेघ व्यवधान हैं वैसे ही जीव और परमात्मा के बीच तीनों दोष व्यवधान हैं। जैसे सूर्य के अंश नेत्र हैं वैसे ही ईश्वर का अंश जीव भी है अतः दर्शन में रुकावट नहीं होनी चाहिये परन्तु जीव और ईश्वर के बीच में मेघों के समान मल-विक्षेप-आवरण का व्यवधान आ गया है जो भगवत् दर्शन में बाधा डालता है - इसी को हटाने के लिये भगवान ने त्रिकाण्डमय वेद कहा है जीवात्मा को परमात्मा की प्राप्ति कराने के लिये नहीं। सूर्य के समान भगवान ईश्वर हैं तो सूर्य की किरण जीव है। सूर्य एक है और किरणें अनगिनत हैं पर क्या सूर्य से अलग हैं कोई किरण, सब किरणें सूर्य-रूप ही हैं। ब्रह्म सूर्य-रूप है तो हमारा स्वरूप किरण-रूप जीव है। कर्म = कर्म दो प्रकार के होते हैं, **सकाम** और **निष्काम**। कर्म क्या है? पिता-पुत्र का, पति-पत्नि का, गुरु-शिष्य का, राजा-प्रजा आदि के धर्मों को ही कर्म कहते हैं।	
43	43 Sep 2013	48					
44	44 Sep 2013	39					
45	45 Sep 2013	27					
46	46 Sep 2013						
47	47 Sep 2013						
48	48 Sep 2013						
49	49 Sep 2013						
50	50 Sep 2013						
51	51 Sep 2013						
52	52 Sep 2013						
53	53 Sep 2013						
54	54 Sep 2013						

38	38 Sep 2013	00	⊕	⊕	⊕	प्रवचन अनुप्लब्ध	NA
39			⊕	⊕	⊕		